बादशाह हुमायूँ

लेखक—

ब्रजरतन दास बी० ए०, एल० एल० बी०

प्राप्ति स्थान—

हिन्दी-प्रचारक पुस्तकालय

ज्ञानवापी चौक, बनारस सिटी

मूल्य १)

भूमिका

भारत के अर्वाचीन काल का इतिहास प्रधानतः मुसल्मानों का इतिहास है। इस काल में प्राचीन हिंदू साम्राज्य के ध्वंसावशेष पर अनेक छोटे बड़े मुसल्मानी राज्य उठे और गिरे थे। इनमें दिल्लीश्वरों का प्रभुत्व तथा ऐश्वर्य सदा सबसे बढ़ा चढ़ा रहता था। यहीं के राजे बादशाह, शाहन्शाह या सम्राट् कहे जाते थे और अन्य सभी स्थानों के केवल नवाब या सुल्तान तक कहे गए हैं। इन दिल्लीश्वरों में भी कई वंश हुए जो एक के बाद दूसरे उत्तरी भारत के विशेषांश पर अधिकृत रहे थे। इन सभी वंशों में मुग़ल वंश, शुद्ध नाम तुर्क वंश, सबसे अधिक प्रतापी और वैभवशाली हुआ है। यह वंश अपने ऐश्वर्य के लिये समग्र पृथ्वी पर प्रसिद्ध होगया था और संसार-प्रसिद्ध राज-वंशों में इसका स्थान किसी से कम नहीं है। इस वंश का प्रथम संस्थापक ज़हीरुद्दीन मुहम्मद बावर था और दूसरा संस्थापक इसी का पौत्र जलालुद्दीन मुहम्मद अकबर था। इन्हीं दो का संबंध स्थापित करने के लिए तथा अपनी उदारता और भाग्य-प्राबल्य से पितामह द्वारा अर्जित राज्य को खोकर भी उसे पुनः अपने पुत्र को देने के लिए नसी-रुद्दीन मुहम्मद हुमायूँ का जन्म हुआ था। 'यथा नाम तथा गुणाः' के अनुसार इसके विजय तथा पराजय दोनों ही का फल अंत में शुभ (हुमायूँ) हुआ। इसी अंतिम बादशाह की यह संक्षिप्त जीवनी है।

हिंदी साहित्य में इतिहासों का अभाव सभी हिंदी प्रेमियों को टक रहा है और वे इधर अब प्रयत्न भी करने लगे हैं जिससे कुछ

अच्छी पुस्तकों का संग्रह होगया है पर अभी भी इस विषय के पुस्तकों की बहुत कमी है। भारत का सर्वांगपूर्ण इतिहास भी इतना विशद है कि उसे एक ग्रंथ क्या एक ग्रंथमाला में भी पूरा करना संभव नहीं है। केवल मुसलमानी काल के दिल्ली ही के एक एक राजवंश के लिए एक एक ग्रंथ कमसे कम होने चाहिएँ। दक्षिण के बहमनी तथा उसके अवशेष पर स्थापित हुए पाँच सल्तनतों, मालवा, गुजरात, बंगाल आदि के राजवंशों के विवरण एक एक पुस्तक से कम में आ नहीं सकते। मराठा साम्राज्य, सिख-शक्ति आदि के लिए बड़े २ ग्रंथ लिखे जाने चाहिएँ। इस प्रकार एक एक अंश लेकर जबतक हम लोग उसपर पूर्ण रूप से विवेचन कर ग्रंथ तैयार न कर लें तब तक भारत के सर्वांगपूर्ण इतिहास का लिखा जाना साधारण कार्य नहीं समझें। अन्य भाषाओं में, संस्कृत, फारसी, अंग्रेज़ी आदि में जो भारतेतिहास के लिए अलभ्य और अमूल्य ग्रंथ मौजूद हैं उन में से अभी कितने का हिंदी में अनुवाद हो चुका है? इनमें भी फारसी तथा अरबी में प्राप्त ग्रंथों का हिंदी अनुवाद होना सबसे पहिला कार्य है क्योंकि हिंदी-साहित्य सेवियों में संस्कृत तथा अंग्रेजी का प्रचुर ज्ञान रखनेवालों की प्रचुरता होने पर भी फारसी अरबी जाननेवाले बहुत ही थोड़े मिलते हैं। इन्हीं फारसी ग्रंथों की जान- कारी के बदौलत उर्दू में तेरह तेरह हिस्सों में 'भारत में मुसल्मानों का इतिहास' आदि विशद ग्रंथ लिखा गया है।

यह सब अभी तक भारतेतिहास के एक राजनैतिक विभाग मात्र ही के लिए लिखा गया है। प्राचीन, अर्वाचीन तथा वर्तमानकालों और

सामाजिक, धार्मिक आदि विभागों के लिए भी इसी प्रकार के ग्रंथों की आवश्यकता पड़ेगी। भारत के राजनैतिक इतिहास में अनेक ऐश्वर्यशाली सम्राट्, उद्भट वीर तथा प्रभावशाली महापुरुष होगए हैं, जिनकी जीवनियाँ सर्वदा हम लोगों के लिए सुपाठ्य रहेंगी। इनमें हिंदू, मुसलमान और अंग्रेज सभी रहेंगे और सभी से हमें कुछ न कुछ ज्ञातव्य बातों का पता लगेगा। 'रूलर्स ऑव इंडिया सीरीज़' नामक अंग्रेज़ी में एक ग्रंथमाला बहुत दिनों से निकलती है, जिसमें अशोक, अकबर, लार्ड वेलेज़ली आदि से महानपुरुषों की बहुत सी जीवनियाँ प्रकाशित हो चुकी है। हिंदी में ऐसे चरित्रमाला की नितांत आवश्यकता है। यद्यपि कुछ जीवनियाँ निकली हैं, पर उनमें अधिकतर निजके मनन तथा अन्वेषण के फल न होकर दूसरों की रचनाओं के अनुवाद हैं या उनके आधार पर लिखे गए हैं। शिवाजी की आठ दस जीवनियाँ इसलिए लिखी गई हैं कि बाज़ार में वे अधिक बिकती हैं। इनमें से अधिकतर एक दूसरे के आधार पर तैयार कर चालू कर दी गई हैं। इतने ही परिश्रम में कई राजपुरुषों की छोटी मोटी आठ दस जीवनियाँ तैयार होजातीं। हिंदी-जगत में एक ऐसा भी ढंग चल रहा है कि कई बड़े बड़े प्रकाशक एक ही पुस्तक के अलग अलग संस्करण निकालने में अधिक उत्साह दिखला रहे हैं। हिंदी की एक पुरानी हिमायती संस्था एक बड़े ग्रंथ के प्रकाशनार्थ यह जानते हुए उद्यत होरही है कि उस ग्रंथ का संपादन एक बहुत ही योग्य पुरुष के हाथों होरहा है और वह उससे स्यात् अच्छा संस्करण निकाल भी न सकेगी। यह केवल ईर्ष्या मात्र कहा जा

विषय-सूची

सकता है पर वह वाग्जाल से छिपा दिया गया है। यदि ऐसा न किया जाय तो उससे हिंदी का विशेष काम हो और एक ही ग्रंथ के कई संस्करणों के बदले कई ग्रंथ तैयार होजायँ।

काशी नागरीप्रचारिणी सभा के लिए गुलबदन बेगम कृत हुमायूँ नामा का जब अनुवाद किया जारहा था उस समय बाबर तथा हुमायूँ विषयक बहुत सी पुस्तकें मनन की गई थीं और कुछ नोट्स भी लिए गए थे। चरित्रमाला निकालने का विचार उठने पर उन नोटों का उपयोग किया गया तथा अन्य मूल ग्रंथों की सहायता लेकर हुमायूँ बादशाह की यह संक्षिप्त जीवनी तैयार की गई। विचार है कि क्रमशः मुग़ल बादशाहों, अन्य मुसलमानी राज्यों के मुख्य मुख्य सुलतानों, मराठा, सिख आदि साम्राज्यों के संस्थापक तथा पोषकों, और सुप्रसिद्ध वीरों के छोटे छोटे पर यथाशक्ति मान्य ग्रंथों के आधार पर पूर्ण विवेचना कर लिखे जाँय, जिनसे विद्यार्थियों तथा जन साधारण के उनके विषय के कुतूहल शान्त हों और ज्ञान बढ़ाएँ। ये चरित्र इतिहास के विद्वानों के ज्ञानवर्द्धन के लिए नहीं हैं। आशा है कि हिंदी प्रेमी गण की इस चरित्र को पढ़कर कुछ भी ज्ञानवृद्धि हुई तो मैं अपने परिश्रम को सुफल समझूँगा।

पौष कृ. ११
सं. १९८७

विनीत
व्रजरत्न दास

विषय-सूची

परिच्छेद | पृष्ठ संख्या

हुमायूँ

हुमायूँ बादशाह

हमीदा बानू बेगम

१. परिच्छेद

पूर्वज-गण तथा राजगद्दी के पहिले का वृत्तान्त

भारत के लिए हुमायूँ जन्मना परदेशीय था और वह अपने पिता मुग़ल-साम्राज्य के संस्थापक सम्राट् बाबर की आक्रमणकारिणी सेना के साथ यहाँ आया था। हुमायूँ के नसों में मध्य एशिया के दो प्रसिद्ध विजेताओं के वंशजों का रक्त प्रधावित हो रहा था। अपने पिता की ओर वह यमराज के कालदंड रूप अमीर तैमूरलंग की छठी पीढ़ी में था, जो मध्यएशिया का तुर्क था। इसी के नाम पर यह वंश तैमूरी वंश कहलाता था। तैमूरलंग के द्वितीय पुत्र मीरानशाह के वंश के होने के कारण यह मीरानशाही भी कहलाता था। इसी प्रकार माता की ओर से इसका संवंध भगवान की संहारिणी शक्ति-रूप चंगेज़ ख़ाँ तक पहुँचता था। बाबर की माता कुतलक़ निगार ख़ानम यूनास ख़ाँ की पुत्री थी, जो चंगेज़ ख़ाँ का वंशज था। चंगेज़ ख़ाँ तेरहवीं शताब्दि का वह मंगोल विजेता, था, जिसकी मारकाट तथा युद्धप्रियता के कारण उसे लोगों ने 'एशिया का काल' की पदवी दी थी। चंगेज़ ख़ाँ के द्वितीय पुत्र चग़त्ता को वंक्षु (ऑक्सस) नदी के उस पार जो प्रांत मिला था उसी में हुमायूँ के तुर्क पूर्वज-

गए आवसे थे, इसलिए यह वंश चग़त्ताई भी कहलाता है। इस राजवंश में तैमूर के बनाए हुए नियमों के साथ साथ चंगेज़ ख़ाँ के बनाए हुए नियम भी माने जाते थे।

इस प्रकार विचार करने से देखा जाता है कि हुमायूँ के चरित्र पर जिस वंश-परंपरागत रक्त का प्रभाव पड़ा है, उसमें तुर्क तथा मंगोल दो धाराओं का सम्मिश्रण है, पर न इसमें तुर्कों सी उद्दंड योग्यता थी और न मंगोलों कीसी भयंकर शक्ति ही थी। यौवन में इसने जो कुछ साहस दिखलाया था और जो वास्तव में इसे वंशानुक्रम से मिली थी उसे अफ़ीम ने मूर्छित कर रखा था। फारस की सभ्यता तथा उदारता का इसपर अच्छा असर पड़ा था। यह न अपने पिता बाबर की और न अपने सुप्रसिद्ध पुत्र अकबर की योग्यताओं तथा गुणों की समानता कर सकता था। न इसमें वह अदमनीय साहस और शक्ति थी, जिससे बाबर तीस वर्ष तक स्वदेश में राज्य दृढ़ करने के लिए भाग्य से युद्ध करता रहा और अन्त में अफ़ग़ानिस्तान तथा भारत के पश्चिमोत्तर के एक विशाल भूभाग पर साम्राज्य स्थापित कर सका था, और न इसमें वह राजोचित योग्यता, सहनशीलता तथा उदारता थी, जिससे अकबर पिता द्वारा प्राप्त चल राज्य को ऐसे सुदृढ़ साम्राज्य में परिवर्तित कर सका था कि उसके मद्यप पुत्र, भ्रातृ तथा पितृद्रोही उत्तराधिकारियों के होते भी वह दो शताब्दि तक बना रह सका था। उस राजवंश-श्रृंखला की यह एक निर्बल कड़ी मात्र था, जो सूर्गेशक्ति को न सहन कर झट टूट गई थी। अस्तु, अब आरंभ में इसके पिता बाबर की संक्षेप में, विशेषतः हुमायूँ से ही सम्बन्ध रखनेवाली घटनाओं का, वृतान्त दिया जाता है।

सन् १४९४ ई० में अपने पिता उमर-शेख़ मिर्ज़ा की मृत्यु पर बाबर फ़र्ग़ानः राज्य का अधिकारी हुआ पर उसे उस राज्य पर अधिकार बनाए रखने केलिए अपने चाचाओं तथा उज़्बेगों से निरंतर लड़ना पड़ता था। उज़्बेग जाति मध्य एशिया में प्रबल नवागंतुक जाति थी, जिसका सर्दार शैबानी ख़ाँ बहुत ही योग्य सेनापति था। अन्त में प्रायः दस वर्ष इस प्रकार युद्ध करने पर बाबर ने शत्रुओं को अपने से बहुत प्रबल देख कर यही निश्चय किया 'कि बस अपने अधीन किसी दृढ़ स्थान के यहां न बच रहने से अब फ़र्ग़ानः से कहीं बाहर निकल जाना चाहिए।' उसी समय उसे एक ओर बढ़ने का सुअवसर दैवात् प्राप्त हुआ और उसे उसने साहसपूर्वक हाथ से जाने नहीं दिया। सन् १५०१ ई० में बाबर का चाचा उलुग़ बेग, जो काबुल का राजा था, मर गया और उसका पुत्र अब्दुर्रज़्ज़ाक विद्रोहियों द्वारा अपने पैतृक राज्य से निर्वासित कर दिया गया। इसके अनंतर एक अर्ग़ून मुग़ल मुहम्मद मुक़ीम उस राज्य पर अधिकृत हुआ। बाबर ने बहुत कुछ सोच बिचार कर अन्त में यही निश्चय किया कि काबुल पर अधिकार कर उस पर पुनः तैमूरी वंश का झंडा फहरावें। उसने सन् १५०४ ई० में काबुल पर चढ़ाई की और बिना किसी विशेष लड़ाई झगड़े के उसी वर्ष के अक्तूबर के आरंभ में उस पर अधिकार कर लिया। इसके अनंतर बंगिश भी विजय किया।

सन् १५०५ ई० के अन्त में शैबानी ख़ाँ ने बलख घेर लिया, जो खुरासान का सब से दृढ़ सीमास्थित दुर्ग था। उस प्रांत के राजा सुल्तान हुसेन मिर्ज़ा ने, जो तैमूरी वंश का था, अपने सभी संबंधियों को, जिनमें बाबर भी था, इस लिए निमंत्रित

किया था कि वे जिसमें अपने वंश के उस प्रबल शत्रु को पूर्ण-तया परास्त करने में उसकी सहायता करें। बाबर अपनी सेना सहित सन् १५०६ ई० के जून में हेरात की ओर चला पर मार्ग ही में उसे पता लगा कि सुलतान हुसेन मिर्ज़ा की मृत्यु हो गई है। यह उनके पुत्रों से मिला पर उन्हें युद्ध के लिए तैयार न कर सका और अन्त में आठ महीने की व्यर्थ यात्रा कर काबुल लौटा। वहाँ पहुँचने पर उसे समाचार मिला कि मिर्ज़ा ख़ाँ सुलतान वैस और मिर्ज़ा मुहम्मद हुसेन गुर्कन ने रास्ता रोक रखा है। पहिला बाबर के चाचा महमूद और मौसी सुलतान निगार ख़ानम का लड़का था और दूसरा बाबर की मौसी खूबनिगार ख़ानम का पति था। बाबर ने यह वृत्तांत सुनते ही धावा किया और बलवाइयों को परास्त कर काबुल पर अधिकार कर लिया। दोनों प्रधान विद्रोही अपनी माता और पत्नी के कारण क्षमा कर दिए गए।

सन् १५०६ ई० में बाबर की अवस्था पच्चीस वर्ष की हो चुकी थी पर उसे अभी तक कोई पुत्र नहीं हुआ था। इसके पहिले एक कन्या आयशः सुलतान बेगम से हुई थी पर वह एक ही मास बाद मर गई। उस समय बाबर केवल उन्नीस वर्ष का था। 'उच्चतम खुदा ने काबुल का लेना शुभ बनाया था कि उसके अनंतर अठारह संतान हुईं' ऐसा बाबर की पुत्री गुलबदन बेगम ने लिखा है। उसी लेखिका ने बाबर की अन्य चार स्त्रियों का उनके संतानों के साथ इस प्रकार उल्लेख किया है।

१–माहम बेगम को क्रमशः हुमायूँ, बारबुल मिर्ज़ा, मेहज़ान बेगम, एशां दौलत बेगम और फ़ारुक़ मिर्ज़ा हुए।

२-गुलरुख़ बेगम को क्रमशः कामराँ मिर्ज़ा, अस्करी मिर्ज़ा, शाहरुख़ मिर्ज़ा, सुलतान अहमद मिर्ज़ा और गुलएज़ार बेगम संतानें हुईं।

३-मासूमा सुलतान बेगम सुलतान अहमद मिर्ज़ा की पुत्री थी और एक लड़की प्रसव कर मर गई। लड़की को माता का नाम दिया गया।

४-दिलदार बेगम की संतानें गुलरंग बेगम, गुलचेहरः बेगम, हिंदाल मिर्ज़ा, गुलबदन बेगम और आलोर मिर्ज़ा थीं।

सन् १५०८ ई० की ६ ठीं मार्च (४ ज़ीक़द: सन् ९१३ हि०) मंगलवार की रात्रि को. जब सूर्य मीन राशि में था, काबुल दुर्ग में हुमायूँ का जन्म हुआ। उसी दिन से बाबर ने आप बादशाह पदवी धारण की और हुमायूँ को मिर्ज़ा की पदवी दी।

सन् १५११ ई० में बाबर को यह समाचार मिला कि मर्व के युद्ध में फारस के शाह इसमाइल ने शैबानी खाँ को मार डाला है। यह वृत्त सुनते ही वह काबुल का राज्य नासिर मिर्ज़ा को सौंप कर स्वयं सेना तथा परिवार के साथ समरकंद गया और शाह इस्माइल की सहायता से उसे विजय कर मावरुन्नहर पर अधिकार कर लिया। इस प्रकार तीसरी बार बाबर तैमूर की गद्दी पर बैठा था, पर आठ महीने के बाद ही भाइओं की शत्रुता के कारण उज़बेगों के सर्दार उबेदुल्लाखाँ से कोलमलिक में फिर पराजित होने पर उसे काबुल लौट आना पड़ा। इन पराजयों से पैतृक राज्य पर अधिकार करने की उसकी आकांक्षा सर्वदा केलिए उसके हृदय से निकल गई और उसने अब भारत की ओर आँख फेरी।

काबुल में राज्य स्थापित करने के बाद बाबर की भारत पर चढ़ाई करने की बराबर इच्छा रही पर भाइओं तथा सर्दारों के विरोध से वह अभी तक उस इच्छा को कार्य रूप में परिणत नहीं कर सका था। पर अब भाइयों की मृत्यु हो जाने पर उसने सन् १५१९ ई० के आरंभ में सेना एकत्र किया और बाजौर दुर्ग विजय कर वहाँ के रहने वालों को मरवा डाला। इसके अनंतर चिनाब और झेलम नदी के बीच के भीरः प्रांत पर चढ़ाई की और वहाँ से, बिना मार काट किए, चार लाख शाहरुखी कर लेकर काबुल लौट गया। इसी समय बदख्शाँ का सर्दार मिर्ज़ा खाँ मर गया और उसके पुत्र मिर्ज़ा सुलेमान के अल्पवयस्क होने के कारण वह प्रांत हुमायूँ को सौंपा गया। बाबर स्वयं वहाँ गया और उस प्रांत का प्रबंध ठीक कर तथा हुमायूँ को वहीं छोड़कर काबुल लौट आया।

इस के अनंतर बाबर ने किलात विजय किया और दुर्ग कन्धार घेरा, जो शाह बेग अर्गून के अधिकार में था। प्रायः डेढ़ वर्ष के घेरे के बाद सन् १५२२ ई० के सितंबर महीने में इस दुर्ग पर अधिकार हो गया। सन् १५१९ ई० के बाद छ सात वर्ष के बीच बाबर ने कई बार भारत पर चढ़ाई की थी और पंजाब के कुछ भागों पर उसका अधिकार भी हो गया था। सन् १५२५ ई० के नवंबर महीने में भारत विजय करने का दृढ़ निश्चय कर तथा अपनी सेना और संपूर्ण शक्ति एकत्रित कर उसने युद्ध यात्रा आरंभ कर दी। बदख्शाँ की सेना के साथ हुमायूँ और ग़ज़नी की सेना सहित ख़ानेकलाँ भी साथ चले। पंजाब के सूबेदार दौलत खाँ लोदी को, जिसने बाबर को भारत पर आक्रमण करने के लिए निमंत्रित किया था, पहिले परास्त किया,

जिसकी सेना तुर्कों को देखकर ही भाग खड़ी हुई थी। पंजाब पर अपना अधिकार दृढ़ कर बाबर दिल्ली की ओर सरहिंद और अंबाला होता हुआ बढ़ा। सन् १५२६ ई० की फरवरी में बाबर को समाचार मिला कि सुलतान इब्राहीम लोदी सेना सहित उससे युद्ध करने के लिए बढ़ रहा है और हिसार फीरोज़ा के चार सहस्र सवार हमीद खाँ की अधीनता में उसकी सहायता को जा रहे हैं। बाबर की सेना का दायाँ भाग हुमायूँ की अधीनता में था और उसने बादशाही आज्ञानुसार इस सहायक सेना से मार्ग ही में युद्ध कर उसे पूरी तरह पराजित कर दिया। बहुतेरे मारे गए और बचे हुए इधर उधर भाग निकले। हुमायूँ का यह प्रथम विजय था और इससे उसे बहुत कुछ प्रोत्साहन मिला था। इसके अनंतर हिसार फ़ीरोज़ा पर अधिकार हो गया और वह प्रांत बाबर ने हुमायूँ को एक करोड़ सिक्के के साथ जागीर में दे दिया। सन् १५२६ ई० के २१ अप्रैल (८ रज्जब सन् ९३२ हि.) शुक्रवार को पानीपत का प्रथम युद्ध हुआ, जिसमें सुलतान इब्राहीम लोदी पंद्रह सहस्र सैनिकों के साथ मारा गया था। इस विजयोपरांत बाबर ने सेना की टुकड़ियों को भेज कर दिल्ली और आगरे पर अधिकार कर लिया। दूसरे ही स्थान में सुलतान इब्राहीम की माता बूआ बेगम सारे राजकोष के साथ पकड़ी गई। दिल्ली के पठान राजकोष से जो माल बाबर को मिला उसका उसने स्वप्न में भी ध्यान नहीं किया था। साथ ही उसने उन सब को इस प्रकार बाँट दिया कि उसके लिए कुछ भी बच न रहा और इस कारण वह कलंदर कहलाया। हुमायूँ को, जिसने युद्ध में वीरोचित साहस दिखलाया था, सत्तर लाख दाम (पौने दो लाख रुपया) और एक कोष दिया गया था, जिसे गिना नहीं

था। प्रत्येक सेनाध्यक्ष, सैनिक तथा कंपवाले को उसका भाग दिया गया। बादशाह की जो संतान, संबंधी, बेगम आदि साथ न थीं उन सब के लिए उनका हिस्सा भेजा गया था। काशग़र, समरकंद तथा मक्का तक के लोगों को उस लूट का भाग भेजा गया था। ग्वालियर के स्वर्गीय राजा विक्रमाजीत के वंशवालों ने प्रसिद्ध ऐतिहासिक बड़ा हीरा हुमायूँ को उनकी रक्षा करने के कारण दिया था और जब उसने उसे बाबर को भेंट किया तब वह उसे ही लौटा दिया गया।

इस युद्ध के बाद बाबर ने साम्राज्य के विद्रोह किए हुए प्रांतों में शांति स्थापन करने तथा विजय करने के लिए सेना भेजी। पूर्व की ओर के अफ़ग़ान विद्रोहियों को दमन करने के लिए हुमायूँ सेना के साथ उधर गया, जो एकत्र होकर दो-आब की ओर बढ़ रहे थे। हुमायूँ के पहुँचते ही वे सब भागे और इसने भी फुर्तीसे उन लोगों का पीछा करते हुए जौनपुर तथा ग़ाज़ीपुर पर अधिकार कर लिया। इसी समय राणा साँगा की युद्ध की तैयारी का समाचार सुनकर पिता की सहायता करने के लिए थोड़ी सी सेना अवध और जौनपुर में छोड़ कर वह कालपी होता हुआ लौट गया। उत्तरी भारत में उस समय राणा साँगा से प्रबल बाबर का और कोई शत्रु नहीं बच रहा था। तारीखे-सलातीने अफ़ग़ानः लिखता है कि अमीर क़ुली बेग के साथ कामराँ अफ़ग़ान-विद्रोह दमन करने के लिए भेजा गया था पर वह अमीर क़ुली को जौनपुर में छोड़कर दरबार लौट आया। कामराँ पंजाब में और हिंदाल काबुल में नियुक्त हुए तथा हुमायूँ बादशाह के साथ रहा।

इसी बीच तार्दी बेग ने बिआना दुर्ग घेरा, जो निज़ाम खाँ की अध्यक्षता में था, पर कुछ फल नहीं निकला। रणथंभौर

के पास के खंधार दुर्ग को इसी बीच राणा साँगा ने विजय कर लिया और बिआना दुर्ग की सहायता करने के लिए उधर बढ़ा पर उसके मुसलमान दुर्गाध्यक्ष ने गढ़ को हिन्दू मित्र को देने के बदले मुसलमान शत्रु को देना उत्तम समझ कर उसे बाबर की सेना को सौंप दिया। इसी प्रकार और इसी कारण धौलपुर दुर्ग भी बाबर के हाथ में चला आया और उसका दुर्गाध्यक्ष मुहम्मद जैतून अफ़ग़ान बादशाही सेवक हो गया। ग्वालिअर का प्रसिद्ध दुर्ग भी इसी प्रकार विजय हुआ। इस दुर्ग को हुमायूँ ने घेरा था पर उसे पूर्व के लोहानी अफ़ग़ान बलवाइओं को दमन करने के लिए चले जाना पड़ा। तातार खाँ सारंगखानीने बादशाह को यही कारण दिखलाते हुए लिखा था कि वह दुर्ग दे देने को तैयार है पर जब बादशाह के कुछ सर्दार थोड़ी सेना के साथ उस पर अधिकार करने आए तब इसने कपटाचरण करने का विचार किया। तब शेखमुहम्मद ग़ौस की सहायता से तातार खाँ पकड़ा गया और दुर्ग पर षड्यंत्र से अधिकार हो गया।

इधर राणा साँगा बिआना की ओर बढ़े और हसन खाँ मेवाती भी भारी सेना के साथ इन से आ मिला। बाबर ने भी आगरे से चल कर ११ फरवरी सन् १५२७ ई० को सीकरी में पहुँच कर पड़ाव डाला। ६ मार्च सन् १५२७ ई० शनिवार का कन्हवा का युद्ध हुआ, जिसमें बाबर विजयी हुआ। इस युद्ध में बाबर स्वयं मध्य में, हुमायूँ दाहिने भाग में और बाबर का दामाद महदी ख्वाजा बाएँ भाग में अध्यक्ष थे। यह विजय पूर्णरूपेण हुई थी। महाराणा साँगा मेवाड़ लौट गए, जहाँ उनकी शीघ्रही मृत्यु हो गई। सन् १५२८ ई० में बाबर ने स्वयं मालवा के प्रसिद्ध दुर्ग चंदेरी को, जो मेदिनीराय की

अध्यक्षता में पाँच सहस्र सैनिकों से सुरक्षित था। कई कड़े धावों के बाद उस पर इसका अधिकार हो गया।

बिहार के अफ़ग़ानों ने सन् १५२७ ई० में पुनः विद्रोह कर दिया और जौनपुर में हिंदाल को जा दबोचा तथा कन्नौज की बादशाही सेना को परास्त कर भगा दिया। चंदेरी दुर्ग लेने के अनंतर बाबर सीधे कन्नौज की ओर गया और २ फरवरी सन् १५२८ ई० को अफ़ग़ानों को हराकर अवध की ओर भगा दिया। इस के प्रायः एक वर्ष बाद सुलतान इब्राहीम लोदी के भाई महमूद ने बिहार में विद्रोह का झंडा गाड़ा और बलवाई अफ़ग़ान गण वहाँ एकत्र होने लगे। सन् १५२९ ई० के आरंभ ही में बाबर ने पूर्व की यात्रा की और चुनार पहुँचा जिसे अफ़ग़ानों ने घेर रखा था। इसके वहाँ पहुँचते ही अफ़ग़ान भागे और महमूद के कुछ सर्दार भी इससे आ मिले। तब महमूद भाग कर बंगाल के सुलतान के शरण में गया, जिसकी सेना दिल्ली की मुग़लवाहिनी से युद्ध करने को सीमा पर तैयार थी। बाबर भी घाघरा पार उतर कर शत्रु के सामने जा पहुँचा और गुरुवार ६ मई सन् १५२९ ई० को उसने बंगाल की सेना को पूर्णतया पराजित किया। बाबर ने इस प्रकार इन तीनों युद्धों में विजय प्राप्त कर उत्तरी भारत में अपना साम्राज्य संस्थापित कर दिया।

इस युद्ध के बाद ही बाबर की प्रधान बेगम माहम तथा अन्य स्त्रियाँ काबुल से भारत आकर इससे मिलीं। माहम बेगम तथा अपनी पुत्री गुलबदन बेगम को साथ लेकर बाबर सैर करने धौलपुर गया, जहाँ उसने बाग और महल बनवाए थे। यहीं हुमायूँ पिता की आज्ञा बिना लिए ही आकर इन लोगों से मिला था। हुमायूँ का वृत्त इस प्रकार है।

कन्हवा युद्ध के अनन्तर हुमायूँ बादशाही आज्ञानुसार अपनी सूबेदारी पर बदख्शाँ चला गया था पर इतने दूर स्थित प्रान्त में परिवार से अलग रहने पर उसे कष्ट होता था और उसने अपना यह विचार पिता को लिख भेजा था। हुमायूँ को इसी वर्ष पहिली संतान हुई थी, जिसपर प्रसन्नता प्रकट करते हुए बाबर ने जो पत्र लिखा था उसमें उसने इस विषय पर उसे बहुत कुछ समझाया था। इस पत्र में वंक्षुनदी के उस पार के देश के राजनैतिक प्रगति पर बहुत प्रकाश डालते हुए हुमायूँ को सम्मति दी थी कि अपने भाइयों की सहायता से 'हिसार, समरकन्द या मर्व की ओर जहाँ समयोचित हो चढ़ाई करो.........यही समय तुम्हारे खतरे उठाने, कठिनाइयाँ सहने तथा वीरता प्रदर्शित करने का है। किसी भी विघ्न बाधा को दृढ़ता से हटाने के प्रयत्न में कमी मत करो, आलस्य तथा आराम से और राजगी से कोई भी मेल नहीं है।' इस पत्र में केवल चढ़ाई ही करने ही की केवल सम्मति नहीं है प्रत्युत् शील उदारतादि अनेक विषयों पर उपदेश हैं। साथ ही यह भी लिखा है कि उसे अपने भाई कामराँ से, जो काबुल का प्रान्ताध्यक्ष है, अच्छा व्यवहार रखना चाहिये। अपने अकेलेपन पर बड़बड़ाना न चाहिए, अपने लिखे हुए पत्रों को दुहरा लेना चाहिए तथा क्लिष्ट शैली के बदले प्रसाद पूर्ण भाषा का प्रयोग करना चाहिए जिससे लेखक और पाठक दोनों ही को कष्ट नहीं होता। 'बादशाहों की भाषा भाषाओं की बादशाह होती है।' बाबर इसे अच्छी तरह जानता था और ऐसा ही उसने पुत्र को समझाया।

परन्तु जब समरकन्द के पुनः विजय करने की कोई आशा नहीं रही और जब सन् १५२८ ई० की गर्मी में हुमायूँ ने

बाबर के बिगड़ते हुए स्वास्थ्य का समाचार सुना तब उसे अपने पिता को देखने की बड़ी उत्कट इच्छा हुई। आने की छुट्टी बिना लिए ही वह तुरन्त बदख्शाँ से चल दिया और काबुल में कामराँ के पास पहुँचा, जो उसी दिन ग़ज़नी से काबुल लौटा था और उसे एकाएक देख आश्चर्य चकित हो गया था। इन दोनों ने आपस में सलाह करके दश-वर्षीय हिंदाल को, जिसे बाबर ने बुला भेजा था, बदख्शाँ भेज दिया और इस प्रकार अपने दूर स्थित प्रान्त का प्रबन्ध कर बिना सूचना दिए ही आगरे आ पहुँचा। वह उसी समय पिताके सामने पहुँचा जब 'हम उसकी माता से उसी के विषय में बातचीत कर रहे थे.........उसकी उपस्थिति से हमारे हृदय गुलाब की कली से खिल गए और हमारी आँखें मशाल की तरह चमकने लगीं।' हुमायूँ की माता को उसके आने की अवश्य ही सूचना रही होगी और स्वभावतः उसने ऐसा प्रबन्ध किया होगा कि जिससे पहिले ही से पिता का हृदयस्थ वात्सल्य प्रेम उद्वेलित हो जाय तथा हुमायूँ के प्रति स्नेह का इस प्रकार उद्रेक हो जिससे उसका बिना आज्ञा के अपने कार्य से हट आने के दोष का बहुत कुछ परिमार्जन होजाय।

इतना सब होने पर भी हुमायूँ के कार्य की अवहेलना कर बिना आज्ञा के चले आने से बाबर बहुत क्रोधित हुआ था। वास्तव में इस प्रकार एक बालक के हाथ में सीमा-स्थित प्रान्त को छोड़कर चला आना बड़ा भयावह था। बाबर की यह आकांक्षा बड़ी प्रबल थी कि पर्वतों पर उसका अधिकार बना रहे और बदख्शाँ की अधिकृत भूमि से वंक्षु-नदी के उस पार के प्रांतों पर चढ़ाई की जाय। बाबर ने

चाहा कि हुमायूँ को पुनः वहीं भेज दे पर वह टालमटूल करता रहा। इस कार्य में उसके माता की कुछ सम्मति थी, नहीं तो हुमायूँ ऐसा करने का साहस न करता। इसकी आज्ञाकारिता के विषय में अहमद यादगार लिखता है कि एक दिन संध्या के समय बाबर ने, जो स्वयं मद्यपान कर रहा था, हुमायूँ को बुला भेजा। जब वह आया तब उसने पिता को नशे में डूबा हुआ और गद्दे पर गहरी नींद में सोए हुए पाया। शाहज़ादः दोनों हाथ बाँधे हुए चुपचाप वहीं खड़ा रहा। अर्द्ध रात्रि के समय जब बाबर की निद्रा टूटी और उसे वहाँ खड़े देखा तब उससे पूछने लगा कि 'क्यों और कब आए ?' जब उसने उत्तर दिया कि 'जिस समय आपकी बुलाने की आज्ञा मिली उसी समय मैं आकर उपस्थित हो गया था।' यह सुनते ही उसे हुमायूँ को बुला भेजने का ध्यान आ गया और उसने उसके व्यवहार से बहुत ही संतुष्ट होकर कहा कि 'यदि ईश्वर तुम्हें राजसिंहासन तथा मुकुट प्रदान करे तो तुम अपने भाइओं को मत मारडालना पर उन पर कड़ी निगाह रखना।' शाहजादा ने जमीन तक सिर झुका कर सब बातें स्वीकार करलीं और यह उसकी उदारता थी कि उसने उन्हें अन्त तक निबाहा। कामराँ, अस्करी तथा हिंदाल तीनों भाइयों से इसे समय समय पर बहुत कष्ट उठाना पड़ा था और इन लोगों ने उसका साथ तक छोड़ दिया था पर इसने अन्त तक उनके साथ दया ही दिखलाया। यदि यह अपने प्रपौत्र के पुत्र की नीति का अवलम्बन करता तो बहुत से कष्टों से बच जाता।

बाबर ने इसके अनंतर अमीर निज़ामुद्दीन अली ख़लीफ़ा को बदख्शाँ जाने के लिए कहा पर उसने भी आज्ञापालन से

इतस्ततः करना आरंभ किया। ख़लीफ़ा समझता था कि यह किसी अन्य पुरुष का षड्यंत्र मात्र है, जो उसे राजधानी से दूर रखना चाहता है। बाबर का स्वास्थ्य बराबर बिगड़ता जा रहा था और उसका मृत्युकाल दृढ़तापूर्वक पास आ रहा था। ऐसी अवस्था में उसका घटनास्थल से दूर जाना नीति युक्त नहीं था। दूरस्थित प्रांत पर न जाने के लिए जो बहाने उठाए गए होंगे उनमें पहिला उसकी अपने स्वामी के प्रति राजभक्ति थी जिस कारण वह अपने स्वामी को अस्वस्थ छोड़ कर उतनी दूर नहीं जा सकता था। प्रधान अमात्य होने के कारण दरबार में उसका जो प्रभुत्व था, वह अब अपनी चरम सीमा को पहुँचने वाला था। इस लोभ को भी वह संवरण नहीं कर सकता था। बाबर को चार पुत्र थे, जिनमें सब से छोटा हिंदाल उस समय ग्यारह वर्ष का था। खलीफा का कुछ और विचार था और उसे हुमायूँ की ओर से कुछ आशंका और भय भी था, जिससे वह हुमायूँ की राजगद्दी के विरुद्ध था। यदि हुमायूँ मार्ग से हटा भी दिया जाता तो अन्य तीन शाहजादे अपने अपने स्वत्वों के अनुसार गद्दी के स्वामी हो सकते थे। पर खलीफा किसी ऐसे व्यक्ति को गद्दी पर बिठाना चाहता था जिसका विशेष स्वत्व न हो और जो उसके हाथ की कठपुतली मात्र हो। इस कार्य के लिए उस ने 'गत बादशाह (उमर शेख मिर्ज़ा) के दामाद' अर्थात् बाबर की बहिन खानज़ादः बेगम के पति महदी ख्वाजा को चुना। यह बात प्रगट भी हो गई और बहुत से सर्दारों ने उसका पक्ष भी ले लिया था। एक दिन खलीफ़ा मुहम्मद मुक़ीम के साथ महदी ख़्वाजः से मिलने गया, जब वह अपने कमरे में बैठा था। यह मुक़ीम तबक़ाते अकबरी के रचयिता निज़ामुद्दीन अहमद

का पिता था। ख़लीफ़ा वहाँ बैठा था कि बाबर ने रोग की पीड़ा के बढ़ने के कारण उसे बुला भेजा। खलीफ़ा के चले जाने के बाद भी महदी ख्वाजः खड़ा ही रहा और महम्मद मुक़ीम को उपस्थिति भूलकर, जो नियमानुसार पीछे हट कर अदब के साथ खड़ा था, उच्च स्वर से अपने ये विचार प्रगट किए कि इंशाअल्लाह तुम्हारी खाल खिंचवाएँगे। परंतु इस प्रकार कहते ही उसे मुक़ीम की उपस्थिति ध्यान में आ गई और वह तेज़ी से उसकी ओर घूमा और उसके कान पकड़ कर कहा कि 'ऐ ताजिक, लाल जिह्वा अपनी तेज़ नोक बेकार नहीं चलाती।' छुट्टी मिलने पर मुक़ीम सीधे खलीफ़ा के पास गया और उससे सारा वृत्तांत कह डाला। ख़लीफ़ा ने तुरंत ही आज्ञा भेजी कि महदी ख्वाजा अपने घर जाय और दरबार में न आवे।

अब यह प्रश्न उठता है कि क्या बाबर खलीफ़ा के इस षड्यंत्र को जानता था और क्या उसका इस में कुछ हाथ भी था। बाबर अपनी बढ़ती हुई अस्वस्थता और पास आती हुई मृत्यु को अवश्य जानता था, ऐसी दशा में उसने स्वयं हुमायूँ को इतने दूरस्थित प्रांत बदख्शाँ से क्यों नहीं बुला भेजा था और बिना आज्ञा के आ जाने पर क्यों पुनः भेज रहा था? वह यह भी जानता था कि जितना बड़ा साम्राज्य उसने स्थापित किया है, वह हुमायूँ के निर्बल हाथों से दृढ़तापूर्वक संचालित नहीं हो सकता है। उसके वंश में उसके पूर्वजों ने राज्य के कई भाग कर अपने पुत्रों में बाँटे थे और स्यात् उसका भी इस प्रकार का विचार रहा हो। उसकी सर्वोपरि महत् आकांक्षा यही थी कि वह समरकंद राजधानी से एक बड़े साम्राज्य पर राज्य करे और यही कारण था कि वह अपने समय से बड़े

पुत्र हुमायूँ को बदख्शाँ में नियुक्त रख कर उसी के द्वारा अपने इस प्रिय स्वप्न को सफलीभूत होते देखना चाहता था। बिना उस की आज्ञा के हुमायूँ के लौट आने पर पुनः वहीं भेजने का यही प्रधान कारण था कि वह उसे वहीं रखना चाहता था और साथ ही यह भी विचार था कि भारत से गर्म देश के भोग विलास से उसे दूर रखे। यह हो सकता है कि ऐसे ही कुछ विचारों से वह दिल्ली का अशांत राज्य, खलीफ़ा की राय ही से रहा हो, प्रौढ़ अवस्था वाले के हाथों में देना चाहता रहा हो, जो उसकी बड़ी बहिन का पति भी था। बाबर और ख़लीफ़ा बाल्यकाल के मित्र थे और दोनों ही चारों शाहजादों की योग्यता अयोग्यता से पूर्णतया अभिज्ञ थे। बाबर के वंश में यह प्रथा भी थी कि राजा अपने सर्दारों के सामने अपना उत्तराधिकारी नियुक्त कर जाय, तब ऐसी अवस्था में बिना उसकी कुछ अनुमति लिए या उसके विचार जाने खलीफ़ा ऐसा षड्यंत्र रचने का कभी साहस न करता।

एक यह प्रश्न भी हो सकता है कि यदि हुमायूँ बदख्शाँ ही में डट कर रह जाता तो दिल्ली के राज्य का कौन उत्तराधिकारी होता और बाबर किसे पसंद करता ? बाबर की पुत्री गुलबदन बेगम ने लिखा है कि सन् १५२८ ई० के मध्य में जब उसके पिता ज़रअफ़शाँ बाग़ में थे, तब उन्होंने कहा था कि राज्य तथा हुकूमत करते करते उसका हृदय झुक गया है और अब वह राज्य हुमायूँ को देकर स्वयं इसी बाग में एकांत वास करेगा। इस कथन के अनंतर ही हुमायूँ पिता की आज्ञा न लेकर आपही से भारतवर्ष चला आया था और उसे पुनः वहीं लौट जाने की आदेश हुआ था। अन्य पुत्रों से हुमायूँ पर बाबर का कुछ अधिक स्नेह था, यह भी आगे की एक घटना से स्पष्ट हो

जाता है। तब ऐसी अवस्था में इस षड्यंत्र में बाबर के सहयोग के लेश मात्र का कारण उसकी वही उच्चाकांक्षा थी कि वह अपना राज्य वंक्षु नदी के उस पार बढ़ाना चाहता था और उस बृहत् साम्राज्य की शक्ति को काबुल में अथवा हो सके तो समरकन्द में केन्द्रीभूत करना चाहता था।

इस प्रकार हुमायूँ और ख़लीफ़ा दोनों ही के बदख्शाँ जाने में असम्मति प्रकट करने पर वह प्रांत उसीके पुराने स्वामी मिर्ज़ा सुलेमान मीरानशाही को सौंप दिया गया, जो अब सोलह वर्ष का हो चुका था। हिंदाल भी तुरंत वहाँ से बुला लिया गया। इन दो कार्यों से यह साफ ज्ञात हो गया कि हुमायूँ के रात्रि के सुव्यवहार का पिता के हृदय पर कैसा असर पड़ा था। इधर ख़लीफ़ा ने भी महदी ख़्वाजा का साथ छोड़ दिया। अब बाबर की मृत्यु पर हुमायूँ का राजगद्दी पर बैठना निश्चित हो गया।

इसी समय हुमायूँ अपनी जागीर संभल में बीमार हो गया और मौलाना मुहम्मद फ़ग़ री ने दिल्ली से यह समाचार आगरे बाबर के पास भेजा। हुमायूँ की माता माहम बेगम यह समाचार पातेही झट उसे देखने को रवाने हुईं और रास्ते में मथुरा के पास उससे मिल कर उसे आगरे लिवा लाईं। गुलबदन बेगम लिखती हैं कि जब बाबर हुमायूँ को देखने आकर उसकी दशा पर बहुत दुखी हुए तब माहम बेगम ने कहा कि 'आप क्यों इतने अधीर होते हैं, आपको तो कई पुत्र मौजूद हैं।' बाबर ने इसका उत्तर दिया था कि 'माहम, यद्यपि हमको कई और लड़के हैं पर जितना हमारा स्नेह हुमायूँ पर है उतना और किसी पुत्र पर नहीं है। हम चाहते हैं कि ऐसे प्रिय पुत्र की इच्छा पूर्ण हो और वह बहुत दिन जीवित रहे। हमारा यह राज्य उसी

के लिए है, दूसरों के लिए नहीं, क्योंकि कोई भी इसके समान नहीं है।'

हुमायूँ का रोग बढ़ता ही गया और हकीमलोग उसे असाध्य तक कहने लगे तब लोगों ने सम्मति दी कि कोई बहुमूल्य वस्तु का ईश्वर के नाम पर निछावर किया जाय, तभी इनके बचने की कुछ आशा हो। वहाँ के उपस्थित मुल्लाओं ने राय दी कि रोगी के प्राण के बदले धन, दौलत या ग्वालियर से प्राप्त बड़ा हीरा दान किया जाय। बाबर ने कहा कि संसार में ऐसा कोई पत्थर का टुकड़ा नहीं है जो हमारे पुत्र की समता कर सके। हम आप इसके बदले में अपने को देने के लिए तैयार हैं। यह बड़े ही कष्टसाध्य दशा में पड़ा है और हमारी शक्ति उस की निर्बलता को सह लेगी।' इसके अनंतर अपने पुत्र के बदले प्राण देने का निश्चय कर यह रोगी के कमरे में गया और शैय्या के सिरहाने जाकर गंभीरता से रोगी की तीन परिक्रमा की। मुर्तज़ा अली करमुल्ला की यह परिक्रमा बुधवार से आरंभ होती है पर दुःख और चिंता से आतुर होकर बाबर ने मंगल ही को इसे आरंभ कर दिया। ग्रीष्म ऋतु होते हुए भी वह दिन विशेष तर गर्म था और बाबर इस कारण विशेष घबड़ाया हुआ था। पलंग की परिक्रमा देते हुए उसने ईश्वर से प्रार्थना की कि 'यदि जीवन के बदले जीवन दिया जा सकता है तो हम बाबर अपना जीवन और अवस्था हुमायूँ के लिए निछावर करते हैं।'

अंत में वह यह कहते हुए सुना गया कि उसकी प्रार्थना स्वीकृत हो गई। बाबर के शब्दों में 'उस समय हमें ऐसा ज्ञात हो रहा था कि हमारा मन किसी कारण बैठा जा रहा है और हुमायूँ कुछ प्रसन्न तथा अच्छा मालूम हो रहा है। वह शीघ्र स्वस्थ होकर उठ खड़ा हुआ और हम बीमार होकर निश्शक्त हो पड़े।

हमने साम्राज्य के प्रधान प्रधान लोगों तथा प्रभावशाली सर्दारों को बुला भेजा और राजगद्दी के चिन्हरूप में उनके हाथ हुमायूँ के हाथ में देकर हमने उसे अपना उत्तराधिकारी घोषित कर दिया तथा उसे राजगद्दी दी।'

जलवायु के अदल बदल से बाबर प्रायः बीमार रहा करता था। समरकंद और काबुल की ठंढी आबोहवा से दिल्ली तथा आगरे की गर्म जलवायु में आ रहने से उसका स्वास्थ्य बिगड़ता ही चला गया। इधर पुत्र की बीमारी बढ़ने से उसकी मानसिक चिंता भी बहुत बढ़ गई थी और अंत में उसके सशक्त शरीर में रोग ने घर बना लिया तथा उन से आक्रांत होकर वह दो तीन महीने तक शैया सेवन करता रहा। जब रोग बढ़ने लगे तब हुमायूँ जो कालिंजर गया था, शीघ्रता से बुला लिया गया। हिंदाल भी अभी तक नहीं आया था, जिसके लिये वह विशेष चिंतित था। अपनी दो पुत्रियों गुलरंग बेगम और गुल-चेहरा बेगम के विवाह संबंध का भी इसी बीमारी में निश्चय किया। इसी बीच में शूल का कष्ट बढ़ने लगा और हकीमों ने स्पष्ट जवाब दे दिया। उन लोगों का यह भी कथन था कि इब्राहीम लोदी के माँ के दिए हुए विष का ही यह असर है, जिससे शूल रोग बढ़ता जा रहा है।

पानीपत के युद्ध के अनंतर बाबर ने इब्राहीम लोदी की माता बूआ बेगम को जागीर दी थी और अपनी माता बनाया था। उसने बाबर के खाना पकाने वाले अहमद को घूस देकर उसके खाने की रोटी में विष मिलवा दिया था पर बाबर ने उसका कुछ ही अंश खाया था इसलिये तत्काल ही वह प्राण-घातक नहीं हुआ था। यह घटना सन् १५२६ ई० के दिसंबर महीने की थी। उसे केवल यही दंड दिया गया था कि उसकी

जागीर छीन कर उसे काबुल में रहने के लिए भेज दिया था पर मार्ग में सिंध नदी में कूदकर उसने आत्महत्या कर ली।

अपनी मृत्यु के तीन दिन पहिले अपने सब सर्दारों और राजकर्मचारियों को बुलवाकर पहिले के उत्तराधिकारी के चुनाव के समर्थन रूप में बाबर ने सब से कहा कि 'हमारे स्थान पर हुमायूँ को सब कोई मानना। उसके प्रति राजभक्ति दिखलाने में मत चूकना। उसके साथ एक मत और एक दिल होकर रहना। हम ईश्वर से यही आशा करते हैं कि हुमायूँ भी सब लोगों से अच्छा वर्ताव रखेगा। और हुमायूँ! तुम्हें, तुम्हारे भाइयों, अपने संबंधियों तथा तुम्हारे और अपने मनुष्यों को परमेश्वर को सौंपते हैं और इन सब को हम तुम्हारे विश्वास पर छोड़ते हैं।'

यही बाबर का अपने उत्तराधिकारी हुमायूँ को अंतिम आदेश था। २६ दिसंबर सन् १५३० ई० (५ जमादिउल् अव्वल सन् ९३७ हि.) को सोमवार के दिन आगरे के ज़रअफशाँ बाग में बाबर ने इस नश्वर संसार को त्यागा। मृत्यु के समय उसकी अवस्था अड़तालीस वर्ष की थी और उसने छत्तीस वर्ष राज्य किया था। पर ये वर्ष कठिनाइयों, घटनाओं, लड़ाइयों तथा उत्साहपूर्ण प्रयत्नों से भरे हुए बीते थे। वह बीस वर्ष तक मंगोलों तथा उज़बेगों से अपने पैतृक राज्य के लिए लड़ता झगड़ता रहा और तब उसने उसकी आशा छोड़कर उस साम्राज्य के स्थापन की ओर मन लगाया जिसके ऐश्वर्य तथा प्रताप का उसने स्वप्न में भी उस समय ध्यान नहीं किया था।

———

२. परिच्छेद

कालिंजर–चुनार–गुजरात

२६ जनवरी सन् १५३० ई० (६ जमादीउल् अव्वल ६३७ हि.) को नसीरुद्दीन मुहम्मद हुमायूँ निज़ामुद्दीन अली खलीफ़ा की सहायता से आगरे में राजगद्दी पर बैठे। साम्राज्य के सभी प्रधान अफसर, अमीर तथा मंसवदार गण दरबार में उपस्थित थे। इनकी उपस्थिति से प्रसन्न होकर बादशाह ने सब पर कृपा दिखलाई और सभो अपने अपने पद मंसब आदि पर नियुक्त रहे। थालों में भर भर कर जवाहिरात, सोने के सिक्के लुटाए गए, जिससे हुमायूँ के राजगद्दी का सन् 'क़िश्तिए ज़र' शब्दों से निकाला गया है। उसी दिन मिर्ज़ा हिंदाल भी बदख्शाँ से आगरे आया, जिसका हुमायूँ ने प्रेमपूर्वक स्वागत कर पिता के कोष से बहुत कुछ उसे प्रदान किया। इसके अनंतर पिता के आज्ञानुसार हुमायूँ ने मिर्ज़ा कामराँ को अफग़ानिस्तान, मिर्ज़ा हिंदाल को मेवात और मिर्ज़ा अस्करी को संभल जागीर में दिया। इस प्रकार अपने भाइयों, सर्दारों आदि को प्रसन्न कर हुमायूँ ने राज्यविस्तार की ओर मन लगाया।

गद्दी पर बैठने के पाँच छ महीने बाद ही हुमायूँ ने कालिंजर पर चढ़ाई की, जिसे वह एक बार पहिले भी घेर चुका था पर अपने पिता बाबर बादशाह की बीमारी का हाल सुन कर उसका विजय करना छोड़ कर वह राजधानी लौट गया था। इस बार भी घेरा आरंभ करने के बादही उसने साम्राज्य की पूर्वीय सीमा पर विद्रोह आरंभ होने का समाचार सुनकर कालिंजर के राजा से संधि करली। इससे कालिंजर पर साम्राज्य का अधिकार स्थापित हो गया और राजा अधीनस्थ सर्दार बन गया।

मिर्ज़ा कामराँ को अफ़ग़ानिस्थान जागीर में मिल चुका था पर पिता की मृत्यु पर वह इस विचार से भारत आया कि यदि वह कुछ अपने लिए और प्राप्त कर सके तो वह उसके लिए प्रयत्न उठा न रखे। पंजाब में बाबर ने मीर यूनास अली को प्रांताध्यक्ष नियत किया था और उस समय वही लाहौर में रहता था। कामराँ ने विना युद्ध के लाहौर पर अधिकार करने के विचार से षड्यंत्र रचा और अपने एक सेनापति करचा खाँ की वहाने से वहुत भर्त्सना किया, जिससे क्रुद्ध होकर तथा डरे हुए का स्वाँग बनाकर वह मीर यूनास अली के शरण में लाहौर चला आया। वृद्ध मीर इस षड्यंत्र में फँस गया और उसने करचा खाँ का खूब आदर सत्कार किया। एक दिन उपयुक्त अवसर पाकर जब यूनास अली मित्रों के साथ मदिरा पान कर रहा था और उसके सैनिक छुट्टी पर चले गये थे, इसने मीर को कैद कर लिया और लाहौर के फाटकों पर अधिकार कर मिर्ज़ा कामराँ को सूचना भेज दी। उसने ससैन्य पहुँचकर लाहौर पर अधिकार कर लिया। कामराँ ने मीर साहब को अपनी ओर से पंजाब का अध्यक्ष नियुक्त करना चाहा पर उसने स्वीकार नहीं किया और हुमायूँ के पास लौट गया। कामराँ ने सतलज नदी तक पंजाब पर अधिकार कर अपने अफसर नियुक्त कर दिए। इसके अनंतर उसने हुमायूँ को लिख भेजा कि उसका यह कार्य बादशाह के विरुद्ध नहीं है प्रत्युत् अच्छे विचार से किया गया है। बादशाह ने भी उसके इस कृत्य को मान लिया और उसे पंजाब जागीर में दे दिया। इसके उपरांत कामराँ ने मिर्ज़ा अस्करी से कंधार ले लिया और ख्वाजा कलाँ बेग को उसका अध्यक्ष नियुक्त कर दिया। सन् १५३५ ई० में फारस के शाह तहमास्प के भाई साम मिर्ज़ा ने कंधार घेर

लिया जिस पर कामराँ शीघ्रता से वहाँ गया और पारसी सेना को परास्त कर उस पर पुनः अधिकार कर लिया। यद्यपि भ्रातृप्रेम के कारण हुमायूँ ने कामराँ के पंजाब, काबुल तथा कंधार पर के आधिपत्य को स्वीकार कर लिया था पर उसके लिये यह कार्य अत्यंत हानिकारक था। तुर्कों का भारत साम्राज्य तुर्की तथा पश्चिम-प्रांतीय लड़ाकू जाति के सैनिकों की शक्ति पर स्थित था और इन सब प्रांतों पर कामराँ का अधिकार हो जाने से हुमायूँ को अपनी सैनिकों की घटी की पूर्ति के लिए नए रंगरूट भर्ती करने के लिए कोई स्थान नहीं बच गया था। भारतीय राजे तथा पठान जाति इस तुर्की राज्य को जड़ से खोद डालने के लिए निरंतर दत्तचित्त थी और यही कारण था कि शेरशाह सहज ही में अपना साम्राज्य स्थापित कर सका था।

सिकंदर लोदी के पुत्र महमूद लोदी ने अफ़ग़ान सर्दारों बिब्बन और बायज़ीद आदि की सहायता से विद्रोह आरंभ कर जौनपुर पर अधिकार कर लिया था। इसी सामाचार को सुनकर हुमायूँ ने कालिंजर से जौनपुर की ओर चढ़ाई की और गोमती नदी के किनारे पड़ाव डाला। दौरा स्थान में सन् १५३१ ई० में युद्ध हुआ जिसमें अफ़ग़ान परास्त होकर भाग गए। जौनपुर में सुलतान जुनैद बर्लास को अध्यक्ष नियत कर हुमायूँ चरणाद्रि दुर्ग (चुनार) गया जो प्रसिद्ध पुराना क़िला था। इस दुर्ग का अध्यक्ष शेरशाह का सब से बड़ा पुत्र जलाल खाँ था। इसने चार महीने के घेरे के बाद इस शर्त पर संधि करली कि उसका छोटा भाई पठान सेना के साथ बादशाही सेवा में उपस्थित रहा करेगा।[1] इस विजय के उपरांत हुमायूँ आगरे लौट गया।

---

१ विशेष वृत्तान्त तीसरे परिच्छेद में देखिए।

हुमायूँ के कुशलपूर्वक लौट आने पर उसकी माता माहम बेगम ने एक जलसा बड़े समारोह के साथ किया जो कई दिन तक जारी था। बदायूनी लिखता है कि इस में बारह सहस्र ख़िलअत वितरित हुए जिनमें दो सहस्र सर्दारों को कमख्वाब तथा सुनहले बटन के ऊपरी कपड़े भी दिए गए थे।

इसी समय मुहम्मद ज़माँ मिर्ज़ा ने हुमायूँ के विरुद्ध विद्रोह किया और हाजी मुहम्मद खाँ कोका के पिता को मार डाला। यह मुहम्मद ज़माँ सुलतान हुसेन मिर्ज़ा बैकरा का पौत्र और बदीउज़्ज़माँ मिर्ज़ा का पुत्र था तथा हेरात से भाग कर बाबर के दरबार में इसने शरण ली थी। बाबर ने इससे अपनी पुत्री मासूमा सुलतान बेगम का विवाह कर दिया था। इसका ममेरा भाई मुहम्मद सुलतान मिर्ज़ा भी, जो सुलतान हुसेन मिर्ज़ा का दौहित्र था, अपने दो पुत्रों उलुग़ मिर्ज़ा और शाह मिर्ज़ा के साथ विद्रोही हो गया। नै (वली) खूब मिर्ज़ा ने भी विद्रोही होकर उन सब का साथ दिया। इन मिर्ज़ाओं का प्रधान स्थल कन्नौज था जिस पर हुमायूँ ने चढ़ाई की और गंगाजी के किनारे भोजपुर में पड़ाव डाल कर अपने चचेरे भाई यादगार नासिर मिर्ज़ा के अधीन विद्रोही मिर्ज़ाओं पर सेना भेजी। यादगार ने गंगा पार कर फ़ुर्ती से विद्रोहियों पर धावा कर दिया और उन्हें परास्त कर सभी मिर्ज़ाओं को वह कैद कर लाया। हुमायूँ ने मुहम्मद ज़माँ मिर्ज़ा को बियाना दुर्ग में कैद कर यादगार मामा की रक्षा में सौंपा पर उसीके सेवकों की सहायता से वह दुर्ग से निकल कर गुजरात की ओर चला गया। मुहम्मद सुलतान और नै खूब मिर्ज़ा को अंधा कर देने की आज्ञा हुई। नै खूब अंधा हो गया पर मुहम्मद सुलतान को अंधा करनेवालों ने उसकी पुतली बचा दी जिससे वह

बच गया और बाद को अपने दोनों पुत्रों के साथ भाग कर गुजरात चला गया। गुजरात के सुल्तानों से बाबर तथा हुमायूँ का भी संबंध मित्रवत् था पर लोदी वंश के सर्दारों तथा इन विद्रोही मिर्ज़ाओं के बहकाने से वहाँ के सुलतान बहादुर शाह ने हुमायूँ के पत्रों का कठोर उत्तर दिया, जिससे उभय पक्ष में युद्ध होना निश्चित हो गया। बहादुर को धमकाने के विचार से सन् १५३३ ई० के फरवरी महीने में हुमायूँ ग्वालियर गया और तीन मास के लगभग वहाँ ठहर कर एप्रिल में आगरे लौट आया।

सन् १५३३ ई० की मई को शूल रोग से हुमायूँ की माता माहम बेगम की आगरे में मृत्यु होगई। चालीसा आदि कृत्य से निवृत्त होकर यहाँ से हुमायूँ दिल्ली गए और उसी वर्ष के जुलाई महीने में दीनपनाह दुर्ग को नींव डालकर आगरे लौट आए। इसके अनंतर हुमायूँ ने कुछ दिन जलसों में व्यतीत किए, जो उसकी राजगद्दी की खुशी तथा मिर्ज़ा हिंदाल के विवाह के उपलक्ष में हुए थे। इन दोनों का अच्छा वर्णन गुलबदन बेगम तथा खाविंद अमीर कृत हुमायूँ-नामों में दिया हुआ है। इस प्रकार बादशाह ने आनंद में कुछ दिन बिताकर गुजरात की ओर कूच किया।

सन् १५२६ ई० में गुजरात के सुलतान मुज़फ़्फ़र की मृत्यु होगई और उसका सब से बड़ा पुत्र सिकंदर शाह गद्दी पर बैठा। द्वितीय पुत्र बहादुर शाह काम की खोज में हिंदुस्तान अर्थात् उत्तरी भारत की ओर चला आया। वह पानीपत के प्रथम युद्ध में दर्शक की भांति उपस्थित था। अन्य दो भाई लतीफखाँ और चाँदखाँ मालवा के सुलतान के पास चले गए। जिस समय बहादुर शाह युद्ध का दृश्य देखकर दिल्ली पहुँचा उस समय

उसे समाचार मिला कि सिकन्दर शाह एमादुलमुल्क द्वारा मारा गया और उसका छोटा भाई नसीर खाँ सुलतान मुहम्मद शाह की पदवी से गुजरात की गद्दी पर बैठ गया है। यह वृतांत सुनते ही वह तुरंत गुजरात लौट गया और वहाँ के सर्दारों ने उसके आगमन पर बड़ी प्रसन्नता दिखलाई तथा उसका साथ दिया। बिना किसी प्रकार की विघ्न बाधा के इसका राजगद्दी पर अधिकार हो गया। एमादुलमुल्क कैद कर सामने लाया गया और उसे कच्चे चमड़े में सिलवा कर प्राणदंड दिया गया।

सन् १५२६ ई० के युद्ध में परास्त होने से लोदी पठान वंश के सर्दार इतस्ततः हो गए थे और उनमें से कई ने गुजरात आकर बहादुर की शरण ली थी। इन लोगों के हृदय में बाबर के द्वारा पराजित होना खटक रहा था और उसकी मृत्यु होजाने पर उसके पुत्र हुमायूँ से युद्ध करने के लिए वे बहादुर शाह को उभाड़ने लगे। इसी समय विद्रोही मिर्ज़ाओं के गुजरात पहुँचने से इन लोगों को और भी अच्छा अवसर मिला जिससे हुमायूँ के पत्र का, जिसमें उसने उसे बलवाइयों को अपने राज्य से निकाल देने के लिए लिखा था, कठोर शब्दों में उत्तर दिया गया। ये दोनों पत्र अबूतुराब कृत 'तारीखे गुजरात' में पूरे उद्धृत किए गए हैं।

सुलतान अलाउद्दीन लोदी के पुत्र तातारखाँ ने बहादुरशाह से यह प्रार्थना की कि यदि उसे काफी धन मिले तो वह उत्तरी भारत में पहुँचकर ऐसी भारी सेना सुसज्जित कर सकता है कि उससे उत्तरी भारत विजय करना सुगम हो जायगा। बहादुर ने उस पर विश्वास कर साढ़े तीन करोड़ रुपए का कोष बयाना प्रांत के अध्यक्ष को भेजकर उसे लिख दिया कि

वह कुल कोष क्रमशः तातार ख़ाँ की आज्ञा से व्यय किया जाय। तातार ख़ाँ आज्ञा लेकर बयाने पहुँचा और वहाँ उसने चालीस सहस्र सवार सेना तैयार किया। बहादुरशाह भी स्वयं गुजरात की सेना लेकर मालवा की सहायक सेना के साथ चित्तौड़ पहुँचा और उसे दूसरी बार घेर लिया। तातार ख़ाँ ने बयाना दुर्ग पर अधिकार कर लिया और वहाँ से आगरे की ओर रवानः हुआ। हुमायूँ ने मिर्ज़ा हिंदाल को पंद्रह सहस्र सेना सहित उसे रोकने को भेजा। तातार की सेना रुपए से एकत्रित की गई थी, इसलिए सामने शत्रु की सुसज्जित सेना को देखकर बिना युद्ध किए हुए ही भागने लगी। थोड़े से सैनिक बच रहे थे जिनके साथ तातार ख़ाँ ने कुछ देर युद्ध किया पर अन्त में वह मारा गया। इसके अनंतर हुमायूँ ने अपनी सेना सहित गुजरात की ओर प्रस्थान किया। बहादुर शाह तातार ख़ाँ का पराजय और बादशाह की चढ़ाई का वृत्तांत सुनकर घबड़ा उठा तथा युद्धीय काउंसिल बैठाई। इसमें यह निश्चित करना था कि चित्तौड़ का घेरा उठा लिया जाय या जारी रखा जाय। कई सेनापतियों की सम्मति घेरा उठा लेने की थी पर सद्र ख़ाँ नामक एक प्रधान सर्दार इसके विरुद्ध था। उसका कथन था कि जब तक हम लोग इस दुर्ग को घेरे हुए हैं तब तक हुमायूँ बादशाह हम लोगों पर आक्रमण नहीं करेंगे, क्योंकि उस हालत में वह काफिरों के सहायक हो जाएँगे। इससे घेरा न उठाना ही निश्चित हुआ। हुमायूँ ने भी सारंगपुर पहुँचने पर यह सब वृत्तान्त सुना और वह वहीं ठहर गया। बहादुर को यह अवसर मिल गया और उसने ३ रमजान ९४२ हि० को चित्तौड़ विजय कर लिया।

जब हुमायूँ ने स्वधर्मी गुजरात की सेना का विजय वृत्तांत सुन लिया तब वह आगे बढ़ा और मालवा के अंतर्गत मंदसोर में दोनों सेनाओं का सामना हुआ। बहादुर की हरावल सेना सैयद अलीख़ाँ तथा खुरासानख़ाँ के आधिपत्य में आगे बढ़ी जो तीन सहस्र थी। युद्ध में यह सेना मुग़ल हरावल से परास्त होकर लौट आई, जिससे कुल सेना का धैर्य्य छूट गया। गुजराती सेना का तोपख़ाना अधिक शक्तिशाली था, इसलिए इन लोगों ने खाई खोदकर सेना को सुरक्षित किया और उपयुक्त स्थान पर तोपखाना लगाकर मुगल सेना पर गोले उतारने का प्रबंध किया। यह सब प्रबंध प्रधान तोपची रूमी ख़ाँ की राय से मुख्यतः हुआ था। प्रधान सेनापति सदरख़ाँ इस निश्चय के विरुद्ध था और तत्काल युद्ध करने का पक्षपाती था।

इस प्रकार दोनों शत्रु सेनाएँ लगभग दो महीने तक आमने सामने पड़ी रहीं। मुग़ल सैनिक तोप की मार के भीतर कभी नहीं गए पर इस प्रकार बैठे बैठे उकताकर हुमायूँ ने शत्रु को घेर लेने का प्रबंध किया, जिससे गुजराती सेना में अकाल पड़ने लगा। बहादुर शाह अपने पाँच मुख्य विश्वासी अफसरों के साथ मांडू की ओर भाग गया, जिनमें बुर्हानपुर के मुहम्मद शाह, मांडू का अध्यक्ष कादिरशाह और मलकख़ाँ दोतानी भी थे। अपने मालिक के भागने का समाचार सुनकर सारी सेना में भगदड़ मच गई।

हुमायूँ ने बहादुर के भागने का समाचार सुनकर उसका पीछा किया। मार्ग में रूमी ख़ाँ भी उससे आ मिला और उसकी नौकरी कर ली। सदर ख़ाँ चार पाँच सहस्र सैनिकों के साथ भागा जा रहा था, जिस पर हुमायूँ ने धावा कर

दिया। इसके अनंतर वह माँडू पहुँचा और उस दुर्ग को घेर लिया। कुछ ही दिनों में, जब कि संधि की बातचीत चल रही थी, थोड़े से मुग़ल सैनिकों ने एक रात्रि दीवाल पर सीढ़ी लगाया और दुर्ग में घुस गए। बहादुर शाह यह सुनते ही आधे दर्जन सैनिकों के साथ गुजरात की ओर भागा और सद्र ख़ाँ आदि सर्दार उस दुर्ग के भीतरी गढ़ में, जिसे सुँगेर कहते हैं, जा बैठे। दूसरे दिन रक्षा का वचन लेकर वे गढ़ के बाहर निकल आए। सद्र ख़ाँ कैद किया गया और आलम ख़ाँ का पैर काट डाला गया, जो बलवाकर भाग आया था।

तीन दिन के अनंतर हुमायूँ ने गुजरात की ओर यात्रा आरंभ की। बहादुर जो चंपानेर पहुँच चुका था वहाँ से भी बहुत सा कोष आदि लेकर अहमदाबाद की ओर गया। हुमायूँ भी चंपानेर होता हुआ अहमदाबाद पहुँचा और उस पर उसने अधिकार कर लिया। इसके बाद पीछा करता हुआ वह खंभात पहुँचा, जहाँ से बहादुर ने भागकर पुर्तगीजों के बंदर डयू में शरण ली थी। यहीं खम्भात में किसीने हुमायूँ को खबर दी कि आज रात्रि को उस पर वहाँ के निवासियों द्वारा आक्रमण होगा। अबुलफ़ज़ल लिखता है कि यह एक वृद्धा स्त्री थी। इस समाचार देने का कारण यह बतलाया जाता है कि उस समाचारदाता का लड़का विजेताओं के यहाँ कैद था और उसने निश्चय कर रखा था कि इस समाचार के पुरस्कार में उसको कैद से छुट्टी मिल जायगी। रात्रि बड़ी सतर्कता में व्यतीत होगई पर उषाकाल के समय पाँच छ सहस्र कोली तथा गँवारों का झुण्ड मुग़ल सेना पर आ टूटा। इस झुण्ड के अध्यक्ष बहादुर शाह के दो अफसर मलिक

मुहम्मद लाड और रुक्नेदाद थे, जिनका कोलीवाड़ा में बहुत प्रभुत्व था। पड़ाव का बहुत सा सामान लुट गया पर सुबह होते ही मुग़ल सेना ने उन्हें घेर कर उनमें से बहुतों को मार डाला। इस गड़बड़ी में सदर ख़ाँ और बहादुर के श्वशुर जाम फ़ीरोज़, जो वहां का हाकिम था, दोनों को उनके रक्षकों ने मारडाला जिसमें वे भाग न जायँ। हुमायूँ ने इन रक्षकों को दण्ड दिया था और इस आक्रमण से क्रुद्ध होकर खंभात को लूटने और जलाने की आज्ञा दे दी थी।

बहादुरशाह के इस प्रकार भाग जाने पर उसका पीछा करना छोड़ हुमायूँ लौट आया और उसने चंपानेर के प्रसिद्ध दुर्ग को घेर लिया। यह गुजरात का कोषागार और एक दृढ़ दुर्ग था। उसके अध्यक्ष अख़्तियार ख़ाँ ने घेरे के लिए खूब तैयारी कर रखी थी, कई वर्ष का घेरे सहने योग्य खान पान का सामान तथा बारूद गोला एकत्र कर रखा था। यह सब होते भी उसके सैनिक उस सीधा सामान से संतुष्ट नहीं थे, जो उन्हें मिलता था और इसलिए उन लोगों ने गुप्त रूप से आसपास के ज़मींदारों से ऐसा प्रबंध कर रखा था कि वे उन लोगों को अन्न तथा घी आदि पहुँचाया करते थे। दुर्ग के जिस ओर से यह सब सामान भीतर लिया जाता था उधर की दीवाल सीधी, बहुत ऊँची तथा खतरनाक थी और उस ओर का रास्ता भी घने जंगल में से होकर गया था।

एक दिन जब हुमायूँ दुर्ग के चारों ओर घूमकर निरीक्षण कर रहा था उस समय उस जंगल की ओर भी जा निकला और उसे कुछ आदमी उस जंगल में से निकलते देख पड़े। वे हुमायूँ के सवारों को देखकर चट जंगल में छिप

गए पर मुगल सैनिकों ने पीछा कर उन सबों को घेरा और कैद कर बादशाह के सामने ले आए। तब उन लोगों के वहाँ आने का कारण ज्ञात हुआ और हुमायूँ ने भी यह निश्चित किया कि जिस मार्ग से अन्नादि दुर्ग के भीतर ले जाया जाता है उसी मार्ग से वह अपने सैनिक भी ले जाए। यह निश्चित कर उसने उस स्थान की बड़ी होशियारी से देख भाल की और पड़ाव में लौट आया। उसने लोहे की बहुत सी बड़ी मेखें तैयार कराईं और दूसरे दिन दुर्ग पर सब ओर से धावे करने का प्रबंध किया, जिसमें दुर्गवाले इधर ही की रक्षा में व्यस्त रहें। रात्रि के समय वह तीन सौ चुने हुए सैनिकों के साथ उसी स्थान पर पहुँचा और वे मेखें दाएँ बाएँ दृढ़ता से दीवाल में ठोक दी गईं। इनके सहारे जब कुछ सैनिक दीवाल पर चढ़कर दुर्ग के भीतर पहुँच गए तब हुमायूँ भी चढ़ने को तैयार हुए पर बैराम खाँ की प्रार्थना करने पर उसने पहिले उसे ही जाने दिया और तब स्वयं दुर्ग के भीतर चला गया। और भी सभी साथ के सैनिक क्रमशः सुबह होते होते दुर्ग में पहुँच गए। दुर्गवालों को इस स्थान पर पूर्ण विश्वास था और इस कारण उन्हें शत्रु के इस प्रकार दुर्ग में घुस आने की कुछ भी खबर न हुई।

सुबह होते ही मुग़ल सेना ने दुर्ग पर धावा कर दिया। हुमायूँ ने अपने सेना की टुकड़ी के साथ फाटक पर धावा कर दिया और उसे खोल कर अपनी सेना बुला ली। इस प्रकार उस दृढ़ दुर्ग पर मुग़लों का अधिकार हो गया और दुर्गाध्यक्ष अख्तियार खाँ कुछ आदमियों के साथ भीतरी गढ़ मुलिया में जा बैठा। दुर्ग के बहुत से सैनिक मारे गए और बहुत से स्त्री पुरुष ने दुर्ग से कूद कर जान दे दिया। अख़्तियार खाँ प्राण

रक्षा का वचन लेकर गढ़ से बाहर निकल आया। उसका अच्छा सत्कार हुआ और वह बादशाही सेना में ले लिया गया। जौहर लिखता है कि गुजरात के बादशाहों का कोष अनेक पीढ़ियों से एकत्र होता हुआ तालाबों तथा कूँओं में संचित था। बहादुर शाह ही के एक सर्दार आलम खाँ की सहायता से वह सब धन निकाला गया। हुमायूँ ने सैनिकों में सोना आदि इतनी उदारता से वितरित किया था कि उस वर्ष गुजरात में किसी को भूमिकर वसूल करने की इच्छा ही नहीं हुई। तार्दी बेग चंपानेर का दुर्गाध्यक्ष नियत हुआ।

इसी बीच बहादुर ने अपने एक चरकिसी मुग़ल एमादुल् मुल्क को अहमदाबाद के आसपास के उन पर्गनों का भूमिकर उगाहने को भेजा जो मुग़लों के अधिकार में नहीं आया था। इसने पचास सहस्र सेना एकत्र कर अहमदाबाद के पास पड़ाव डाला। चंपानेर दुर्ग के टूटने के पाँच छ दिन बाद यह समाचार हुमायूँ को मिला। उसने उसी समय मिर्ज़ा अस्करी, यादगार नासिर मिर्ज़ा और मीर हिंदू बेग के अधीन पेश खेमा आगे भेज दिया और दूसरे दिन स्वयं कुल सेना के साथ रवानः हुआ। जब मुग़ल हरावल महिंद्री नदी के किनारे पहुँचा तब एमादुल् मुल्क के हरावल से उसका सामना हुआ जो शेख हमीद के अधीन था। उसी नदी के तट पर खानपुर के पास युद्ध हुआ, जिसमें हमीद मारागया।

दूसरे दिन बादशाह ने महिंद्री नदी पार कर अहमदाबाद की ओर प्रस्थान किया। नरयाद और महमूदाबाद ग्रामों के बीच दस सहस्र सवारों के साथ मिर्ज़ा अस्करी का एमादुल् मुल्क का सामना हो गया जिसके साथ पचास सहस्र सवार और पैदल सेना थी। गुजरातियों की सेना का धावा इतने वेग

से हुआ था कि मिर्ज़ा अस्करी को अपनी सेना सजाने के लिए समय भी नहीं मिला और उसे पीछे हटकर काँटों के बीच के एक स्थान में ठहरना पड़ा। एमादुल्मुल्क के सैनिकगण लूटने में लग गए और उन लोगों ने यह ध्यान नहीं किया कि मिर्ज़ा अस्करी सेना के साथ उन लोगों के पास ही एक स्थान में डटा हुआ अवसर देख रहा है। इतने ही में यादगार नासिर मिर्ज़ा, क़ासिम हुसेन और हिंदू बेग ने अपनी अपनी सेनाओं के साथ एमादुल्मुल्क पर आक्रमण कर दिया तथा मिर्ज़ा अस्करी ने भी अपने सैनिकों को उत्साहित कर पीछे से धावा कर दिया। एमादुल्मुल्क पूर्णतया परास्त होकर भागा और अस्करी ने अहमदाबाद तक उसका पीछा किया।

बादशाही सेना अहमदाबाद में नहीं घुसी, क्योंकि वह नगर मिर्ज़ा अस्करी को जागीर में दिया जा चुका था। मिर्ज़ा यादगार नासिर को, जो बाबर के सौतेले भाई नासिर मिर्ज़ा का पुत्र था, नहरवाला पत्तन और कासिम हुसेन सुलतान को, जो सुलतान हुसेन मिर्ज़ा बैकरा की पुत्री आयशा बेगम का पुत्र था, भड़ोच जागीर में मिला। हिंदूबेग पाँच छ सहस्र सवारों के साथ इस कार्य पर नियत हुआ कि जहाँ कहीं आवश्यकता पड़े वह पहुँचकर सहायता करे। ऐसा प्रबंध कर बादशाह बुर्हानपुर की ओर गए और उधर ही से मांडू चले गए, जहाँ तीन चार महीने तक आराम करते रहे। इसी बीच सुलतान बहादुर के एक सर्दार ख़ानेजहाँ शीराज़ी ने नौसारी पर धावा कर वहाँ के मुग़ल अध्यक्ष अब्दुल्ला खाँ उज़बेग को, जो कासिम हुसेन सुलतान का नौकर था, परास्त कर उसपर अधिकार कर लिया। एक दूसरे सर्दार मुहम्मद इसहाक़ सैयद ने खंभात पर अधिकार कर लिया और दोनों ने अपनी अपनी सेना

सम्मिलित कर भड़ोच की ओर प्रस्थान किया। सूरत बंदर का अध्यक्ष रूमीखाँ भी इन लोगों से मिलकर नदी के मार्ग से युद्धीय नावों का बेड़ा भड़ोच ले आया। जल और स्थल दोनों ओर से आक्रमण होने पर कासिम हुसेन सुलतान उन लोगों का सामना न कर सका और भड़ौच को खाली कर चंपानेर चला आया। एक अन्य गुजराती सर्दार सैयद लाड ने बड़ौदा पर अधिकार कर लिया। दरियाखाँ तथा मुहाफ़िज़ुल् मुल्क, जो रायसेन दुर्ग में थे, इन विजय वार्ताओं को सुनकर अपनी अपनी सेनाओं के साथ पत्तन पहुँचे। मिर्ज़ा यादगार नासिर मिर्ज़ा यहाँ का अध्यक्ष था। मिर्ज़ा अस्करी ने उसे पत्र लिखा कि शत्रु पत्तन आपहुँचे हैं, इसलिए यही उचित होगा कि तुम अहमदाबाद चले आओ और हम तुम मिलकर शत्रु से युद्ध करें। यादगार नासिर ने लिख भेजा कि वह अकेले ही पत्तन की रक्षा के लिए समर्थ है और किसी प्रकार की सहायता उसे नहीं चाहिए। यदि वह अहमदाबाद चला जाएगा तो पत्तन हाथ से निकल जायगा। इस उत्तर पर भी अस्करी ने उसे अहमदाबाद चले आने को लिख भेजा, जिससे उसे बड़े अफसर की आज्ञाभंग करने का साहस नहीं हुआ और पत्तन खाली कर वह अहमदाबाद चला गया। गुजराती सेना ने पत्तन पर अधिकार कर लिया और तब सुलतान बहादुर को अहमदाबाद पर चढ़ाई करने के लिए आमंत्रित किया, जो उस समय तक बंदर द्वीप में आत्मरक्षा कर रहा था।

यह समाचार मिलते ही बहादुरशाह तुरंत सरखेज पहुँचा, जो अहमदाबाद के पास है। इसकी सेना क्रमशः बहुत बढ़ गई और इस से युद्ध करने के लिए मिर्ज़ा अस्करी ने यादगार नासिर मिर्ज़ा, कासिम हुसेन और हिंदूबेग के साथ

ससैन्य अहमदाबाद से निकलकर असावल में पड़ाव डाला, जो सरखेज के सामने है। परंतु तीन चार दिन के बाद बिना युद्ध किए ही उसने अकारण चंपानेर की ओर का रास्ता लिया। बहादुर ने पीछा किया जिसके हरावल से, जो सैयद मुबारक और उलुग़ख़ाँ के अधीन था, और मिर्ज़ा अस्करी के चंदावल से, जो यादगार नासिर के अधीन था, महमूदाबाद में खूब युद्ध हुआ। यादगार घायल होकर चंपानेर लौट गया, जहाँ दुर्ग के बाहर ही ये लोग ठहरे। मार्ग में इन लोगों का बहुत सा सामान, खेमें आदि लुट गए थे। चंपानेर के दुर्गाध्यक्ष तर्दी बेग ने इन लोगों का बहुत सत्कार किया। दूसरे दिन मिर्ज़ाओं ने आपस में राय की कि चंपानेर के कोष से कुछ अंश लेकर सेना का सामान सुसज्जित किया जाय और तब शत्रु से युद्ध करने का प्रबंध हो। जब तर्दी बेग को यह समाचार दिया गया तब उसने यह प्रस्ताव नहीं स्वीकार किया और कहला भेजा कि बादशाह की आज्ञा पाने ही पर कोष से वह कुछ देसकेगा। इसके अनंतर वह मिर्ज़ाओं से मिलने के लिए दुर्ग से बाहर निकला पर यह समाचार पाने पर कि मिर्ज़ाओं ने मिलते समय उसे कैद कर लेने की मंत्रणा की है वह दुर्ग में लौट गया और इन लोगों को कहला भेजा कि वे वहाँ से झट मांडू चले जायँ। कहने के साथ साथ उन पर उसने दो एक गोले भी फेंकवाए, जिससे वे शीघ्र वहाँ से हट जायँ।

इस वर्ताव पर मिर्ज़ाओं ने सभा कर यह निश्चित किया कि मिर्ज़ा अस्करी हिन्दुस्तान का बादशाह घोषित किया जाय और हिंदू बेग प्रधान मंत्री बनाया जाय। अन्य मिर्ज़ाओं के लिए भिन्न भिन्न प्रांत जागीर में देना निश्चय हुआ। ऐसा प्रस्ताव

एक बार हिंदू बेग ने पहिले अस्करी मिर्ज़ा से किया था, जब वह अहमदाबाद के सामने था पर उस समय उसने स्वीकार नहीं किया था। परन्तु इस बार सभी मिर्ज़ा इस विद्रोह में सम्मत थे, इसलिए इस निश्चय के उपरांत सब ने आगरे की ओर प्रस्थान किया। जब बहादुरशाह ने मिर्ज़ाओं के भागने का वृत्तांत सुना तब वह तुरंत कूच कर महींद्री नदी पर आपहुँचा। तर्दी बेग घेरा उठाने की शक्ति अपने में न देख कर यथासंभव दुर्ग का कोष लेकर पाल की ओर से मांडू चला गया। पाँच छ दिन में वहाँ पहुंचकर उसने मिर्ज़ा अस्करी के विद्रोह का समाचार सुनाया। हुमायूँ ने इस विद्रोह के कारण आगरे ही लौट जाना निश्चय किया और गुजरात का प्रबंध कुछ न कर उत्तर की ओर चल दिया। मार्ग में वे सब विद्रोही मिले और उन सब ने दरबार में उपस्थित होकर क्षमा प्राप्त की। इधर बहादुर शाह चंपानेर पर अधिकार कर पुनः गुजरात का स्वतंत्र राजा बन बैठा।

सन् १५३५ ई० में हुमायूँ से पराजित होने पर बहादुर शाह ने मुहम्मद ज़माँ आदि मिर्ज़ाओं को उत्तरी भारत में उपद्रव मचाने के लिए भेज दिया था। मुहम्मद ज़माँ सिंध होता हुआ लाहौर गया और उसे घेर लिया, पर ले न सका। अन्त में हुमायूँ के लौटने का समाचार सुन कर वह फिर गुजरात लौट गया। मुहम्मद सुलतान मिर्ज़ा ने अपने पुत्रों के साथ गंगाजी के पूर्वोत्तर प्रांत में पहुँच कर बेलगाँव में पड़ाव डाला और वहाँ से अपने पुत्र उलुग मिर्ज़ा को जौनपुर, कड़ा मानिकपुर आदि विजय करने के लिए भेजा। मिर्ज़ा हिंदाल, जो उस प्रांत का अध्यक्ष था, उसने उसका सामना करने की तैयारी की और दोनों ओर से यद्यपि सेनाओं का

कई बार मुठभेड़ हुआ पर युद्ध नहीं हुआ था कि हुमायूँ के लौटने का समाचार मिला। इसके बाद मिर्ज़ा हिंदाल ने इन लोगों को परास्त कर बेलगाँव पर अधिकार कर लिया तब अन्त में निराश होकर मुहम्मद सुलतान अपने पुत्रों सहित बंगाल की ओर चला गया।

इसी वर्ष सन् १५३७ ई० के आरंभ में शाह तहमास्प ने साम मिर्ज़ा का बदला लेने के लिए कंधार पर चढ़ाई की। वहाँ के अध्यक्ष ख़्वाजा कलाँ बेग ने क़िला दे दिया और अपने लिए खूब सजाए हुए कमरे में शाहतहमास्प का आदर सत्कार भी किया। शाह उसके बर्ताव से बहुत प्रसन्न हुआ और अपने अफसरों को दुर्ग सौंपकर एराक़ लौट गया। कामराँ यह समाचार सुन कर कंधार गया और उसने उस पर फिर अधिकार कर लिया।

३. परिच्छेद

शेरशाह—बंगाल पर चढ़ाई—हुमायूँ की पराजय—सूरीवंश

शेरशाह सूरी का असल नाम फरीदख़ाँ था और इसके पिता का नाम हसनख़ाँ था। इसका दादा इब्राहीमख़ाँ अपनी जन्मभूमि रूह से सुलतान वहलोल लोदी के दरवार में नौकरी की खोज में आया था। रूहप्रान्त कावुल के पूर्व हसन अब्दाल तक और दक्षिण में सिंधी प्रांत तक फैला हुआ है। इसी स्थान के अनेक फ़िर्क़ों में एक सूर भी है, जो अपने को गोरी सुलतानों का वंशज समझता है। इब्राहीम पहले हिसार फीरोज़ा और उसके अनन्तर नारनौल में कुछ दिन नियुक्त रहा। वहलोल की मृत्यु पर जब सिकदर लोदी दिल्ली की गद्दी पर बैठा तब उसके एक सर्दार जमालखाँ ने, जो जौनपुर का हाकिम नियत किया गया था, इब्राहीम के पुत्र हसन खाँ को सहसरावँ, खवासपुर और टाँडा जागीर में दिया और उसे पाँच सौ सवारों का अफसर बनाया। हसनखाँ को फरीद और निज़ाम नामक दो पुत्र विवाहिता स्त्री से और छ अविवाहिता से थे। हसन का प्रेम फ़रीद पर अधिक नहीं था, इससे वह जमालखाँ के पास जौनपुर चला गया और वहीं विद्याध्ययन में लगा रहा। दो तीन वर्ष में उसने अच्छी शिक्षा प्राप्त कर ली। इसके अनन्तर हसनखाँ स्वयं जौनपुर गया और फ़रीद को समझाकर तथा अपनी जागीरों का दारोग़ा बना कर वहीं भेज दिया।

फरीद ने जागीर में पहुँच कर वहुत अच्छा प्रबन्ध किया और वहाँ के विद्रोही ज़मींदारों का पूर्णतया दमन कर अपनी धाक जमाली। हसनखाँ इसके प्रबंध पर बहुत प्रसन्न

था, पर अपनी रखेली के प्रेम में पड़कर उसने उसके दो पुत्रों-सुलेमान और अहमद—को जागीर का दारोग़ा बना दिया. जिससे फ़रीद अप्रसन्न होकर अपने सहोदर भाई निज़ाम के साथ आगरे चला गया और वहीं सुलतान इब्राहीम के एक सरदार दौलतख़ाँ लोदी की नौकरी कर ली। दौलतख़ाँ ने इब्राहीम लोदी से फरीद के बारे में प्रार्थना की थी, पर उसने यही उत्तर दिया कि पिता का विरोध करने वाला मनुष्य भला नहीं हो सकता। हसनखाँ की मृत्यु पर दौलतखाँ ने वह जागीर फ़रीदख़ाँ के नाम करा दी। तब फ़रीद ने जागीर में पहुँच कर सब प्रबंध अपने हाथ में ले लिया। इस बात से सुलेमान तथा अहमद बिगड़ कर जौनपुर के हाकिम मुहम्मदखाँ सूरी के पास चले गये और उससे सहायता माँगी। उसी समय बाबर की हिन्दुस्तान पर चढ़ाई हुई और पानीपत में युद्ध की तैयारी होने लगी। इस कारण मुहम्मद ने फरीदखाँ के पास दूत भेजकर मेल करा देना उचित समझा। परन्तु फरीद प्रबन्ध में कुछ अधिकार न देकर केवल उतना भाग आय का देना चाहता था जो सुलेमान को उसके पिता के समय मिलता था। सुलेमान अधिकार चाहता था, इससे सन्धि न हो सकी। पानीपत के प्रथम युद्ध में सुलतान इब्राहीम लोदी के मारे जाने पर फरीद दरियाखाँ लोहानी के पुत्र बहादुरख़ाँ की सेवा में पहुँचा, जो सुलतान मुहम्मद की पदवी से बिहार का स्वतन्त्र राजा बन बैठा था। यहाँ एक दिन शिकार में फरीद ने एक शेर को तलवार से मारडाला, जिससे प्रसन्न होकर सुलतान मुहम्मद ने उसे शेरखाँ की उपाधि दी और उस से इतना अधिक प्रसन्न होगया कि कुछ दिन के अनन्तर

उसे अपने पुत्र जमालख़ाँ का शिक्षक नियुक्त कर दिया। एक बार जागीर से लौटने में शेरख़ाँ को अधिक समय लग गया, जिस पर मुहम्मदख़ाँ सूरीने उसके विरुद्ध सुलतान मुहम्मद के कान भरे और प्रार्थना की कि यदि उसकी जागीर उसके भाई सुलेमान को दे दी जायगी तो वह आप ही शीघ्र लौट आवेगा। पर सुलतान मुहम्मद ने इस बात को नहीं स्वीकार किया और केवल इतनी ही आज्ञा दी कि हसनख़ाँ की जागीर भाइयों के बीच उचित रीति से बाँट दी जाय। मुहम्मदख़ाँ सूरी ने जौनपुर पहुँचकर फरीदख़ाँ से हिस्सा दे देने के लिये कहलाया, पर शेरख़ाँ ने स्पष्ट उत्तर दे दिया कि 'जागीरें पैतृक संपत्ति नहीं होतीं। बादशाह जिन्हें चाहते हैं उन्हें जागीरें देते हैं! मैंने ये परगने सुलतान इब्राहीम लोदी से पाये हैं।' मुहम्मदख़ाँ सूरी इस उत्तर से बहुत क्रुद्ध हुआ और अपनी कुल सेना के साथ सुलेमान और अहमद को उन परगनों पर अधिकार कर लेने को भेजा। खवासपुर और टाँड़ा के दारोगा मलिक सुख ने, जो खवासख़ाँ का पिता था, इनका सामना किया, पर युद्ध में मारा गया।

शेरख़ाँ ने इस विपत्ति में बाबर की ओर से नियुक्त कड़ा और मानिकपुर के सूबेदार सुलतान जूनेद बर्लास की शरण ली और उसकी सहायता लेकर ससैन्य लौटा। मुहम्मदख़ाँ सूरी ने अपने में युद्ध करने की शक्ति न देख कर रोहतास के पहाड़ों की राह ली। शेरख़ाँ ने जौनपुर और अपने परगनों पर अधिकार करके जब निज स्थानों को दृढ़ कर लिया तब मुहम्मदख़ाँ सूरी से कहला भेजा कि 'आप हमारे चचा लगते हैं, इसलिए आप क्यों व्यर्थ पहाड़ों में कष्ट उठाते हैं। आप आकर अपने परगनों पर अधिकार करें, क्योंकि मुझे तो अपने

ही परगनों की आवश्यकता है।' मुहम्मदखाँ सूरी यह सुन कर अपने स्थान पर चला आया और उसने उसका बहुत उपकार माना। इसके अनन्तर शेरखाँ निज़ामखाँ को जागीर का प्रबंध करने को छोड़कर स्वयं जूनेद् बर्लास के पास चला गया।

उस समय जूनेद् बर्लास बाबर के पास जा रहा था, इसलिये शेरखाँ को भी साथ लेता गया और बादशाह से भेंट करा दी। इसके अनन्तर वह शाही सेना के साथ चन्देरी गया। कुछ दिन मुग़लों अर्थात् तुर्कों के साथ रहने से वह उन का रहन सहन तथा उनकी निर्बलताओं को अच्छी तरह जान गया। इसके अनन्तर कुछ शंका होने के कारण डर से, बिना किसी प्रकार की आज्ञा लिये ही, वह अपनी जागीर को भाग आया और जूनेद् बर्लास को लिख भेजा कि मेरी जागीर पर मुहम्मदखाँ सूरी बिहार की फौज चढ़ा लाना चाहता था, इसी से मैं चला आया हूँ, नहीं तो मैं अपने को आप का एक सेवक समझता हूँ। इस घटना के कारण जब मुगलों से किसी प्रकार की सहायता पाने की उसे आशा नहीं रह गई तब वह पुनः सुलतान मुहम्मद के पास गया और उसने भी प्रसन्न होकर उसे फिर जलालखाँ का 'अतालीक' बना दिया।

कुछ ही दिनों के बाद सुलतान मुहम्मद की मृत्यु हो गई। जलालखाँ के अल्पवयस्क होने से उसकी माता मलका लाडू शेरखाँ की सहायता से राज्य का प्रवन्ध करती रही, पर कुछ दिनों के अनन्तर मलका की भी मृत्यु हो गई, जिससे शेर खाँ स्वतंत्र रूप से राज्य का प्रवन्ध करने लगा। बंगाल के सुलतान महमूद की ओर से उसका बहनोई मखदूमुल्मुल्क हाजीपुर का सूबेदार नियुक्त था, जिसकी शेरखाँ से मित्रता हो

गई थी। इसका पता पाकर सुलतान महमूद ने सशङ्कित हो कर मुँगेर के सूबेदार कुतुब खाँ को ससैन्य शेरखाँ और मख़्दूमुल्मुल्क को दंड देने के लिये भेजा। यद्यपि शेरखाँ ने दोबार सन्धि का प्रस्ताव किया, पर उसका कुछ भी फल न निकला। अंत में शेरखाँ ने अफ़ग़ानों को एकत्र कर युद्ध की तैयारी की। युद्ध में कुतुब खाँ मारा गया और शेरखाँ को लूट में इतना अधिक माल मिला कि वह बहुत प्रबल हो गया। लोहानी सरदार इस विजय से शेरखाँ से द्वेष करने लगे और उसे मार डालने के उनलोगों ने अनेक प्रयत्न किये, पर उसकी सतर्कता से वे उसका कुछ न कर सके। अन्त में जलालखाँ तथा लोहानी सर्दारों ने बंगाल के सुलतान महमूद के पास जाकर उसकी अधीनता स्वीकार कर ली और उसकी सहायता लेकर बिहार पर चढ़ाई की। कुतुब खाँ का पुत्र इब्राहीम खाँ इस सहायक सेना का सर्दार था। शेरखाँ दुर्ग में जा बैठा और वहीं से लड़ता रहा। इब्राहीम ने और सहायता मँगाई, पर उसके पहुँचने के पहिले ही शेरखां दुर्ग से बाहर निकल पड़ा। उसने अपनी कुछ सेना लड़ने को आगे भेज दी, जो थोड़ी देर तक युद्ध करके भाग खड़ी हुई। इस पर जब बंगाल की सेना पीछा करने को चली तब शेरखाँ नई सेना के साथ टीले की आड़ से निकल कर उस पर टूट पड़ा। इब्राहीम मारा गया और उसकी सेना नष्ट हो गई। इस प्रकार शेरखाँ अब बिहार का स्वतन्त्र सुलतान बन बैठा।

उस समय सुलतान इब्राहीम लोदी की ओर से चुनार का दुर्गाध्यक्ष ताजखाँ था, जिसकी स्त्री लाडू मलका वन्ध्या थी। इस पर शेरखां का विशेष प्रेम था। ताजखां के लड़के, जो अन्य स्त्रियों से थे, उससे द्वेष रखते थे। एक दिन उसके बड़े लड़के

ने मलका पर तलवार चलाई जो ओछी पड़ी, पर यही शोर मचा कि वह मारी गई। ताजखाँ बहुतही क्रुद्ध होकर तलवार लिये वहाँ पहुँचा और पुत्र पर झपटा, जिसने अपनी रक्षा करने में पिता को मार डाला। शेरखाँ ने अच्छा अवसर देखकर चुनार पर अधिकार कर लिया और ताजखाँ के पुत्रों जमालखाँ, सारंग खाँ आदि को मार कर लाडू मलका से निकाह कर लिया।

सिकंदर शाह लोदी का पुत्र महमूद, जो चित्तौड़ के महाराणाओं की शरण में रहता थो, पटना के पठानों के बुलाने पर वहाँ चला आया और वहाँ का सुलतान बन गया। इसके अनन्तर उसने एक भारी सेना के साथ बिहार पर चढ़ाई की। शेरखाँ ने यह समझ कर कि सभी पठान सुलतान महमूद लोदी का साथ देंगे, उसकी अधीनता स्वीकार कर ली। शेरखाँ सेना एकत्र करने के बहाने अपनी जागीर को चला गया। जब सुलतान महमूद लोदी ने बादशाही राज्य पर चढ़ाई करने का निश्चय किया तब इसे भी बुला भेजा। इन लोगों ने लखनऊ तक के प्रांत जीत लिये। शेरख़ाँ महमूद लोदी के सरदार बिब्बन और बायजीद से द्वेष रखता था, इसलिये उसने हुमायूँ के एक सर्दार मीर हिन्दू बेग कुर्ची को लिख भेजा कि मैं युद्ध के समय हट जाऊंगा और सुलतान का साथ नहीं दूँगा। वास्तव में वह हट भी गया, क्योंकि वह जानता था कि महमूद लोदी के पराजित होने से ही बिहार में उसका प्रभाव बढ़ सकता है। हुमायूँ कालिंजर से, जिसे वह घेरे हुये था, जौनपुर आया और गोमती के किनारे दौरा के पास घोर युद्ध में उसने महमूद को पूर्णतया परास्त किया। यह युद्ध सन् १५३१ ई० में हुआ था। सुलतान महमूद निराश होकर उड़ीसा चला गया, जहाँ दो वर्ष बाद उसकी मृत्यु हो गई।

इसके अनन्तर हुमायूँ ने चुनार गढ़ लेने की कोशिश की और कुछ सरदारों को आगे भेज कर दुर्ग घेर लिया। चार महीने के घेरे के बाद शेरखाँ ने सन्धि का प्रस्ताव किया कि यदि मुझे चुनार का दुर्ग बादशाह की ओर से मिल जाय तो मैं अपने पुत्र कुतुबखाँ को पाँच सौ सवारों के साथ शाही सेवा में नियुक्त कर दूँगा। उस समय बहादुर शाह गुजरात वाले की चढ़ाई के समाचार आ रहे थे, इससे हुमायूँ ने इस प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया। शेरखाँ ने भी अपने पुत्र कुतुबखाँ को ईसा खाँ हाजिब के साथ हुमायूँ के पास भेज दिया। हुमायूँ आगरे को लौट गया और वहाँ से गुजरात पर चढ़ाई की। गुजरात-विजय करने के अनन्तर जब हुमायूँ माँडू में आराम कर रहा था तब उसके भाई मिर्ज़ा अस्करी तथा चचेरे भाई यादगार नासिर ने विद्रोह मचा दिया, जिससे लाचार होकर हुमायूँ को गुजरात और मालवा के ज़ीते हुये प्रांतों को फिर शत्रुओं के हाथ में छोड़कर लौट आना पड़ा। हुमायूँ को अपने भाइयों का विद्रोह शांत करने तथा आराम चैन करने में दो वर्ष से अधिक समय लग गया। इतने समय में शेरशाह ने अपनी शक्ति बहुत बढ़ा ली। इसी समय कुतुबखाँ भी बिना आज्ञा लिये ही गुजरात से अपने पिता के पास भाग आया।

शेरशाह ने बिहार को अपने शत्रुओं से मुक्त कर बंगाल पर चढ़ाई करने की तैयारी की। बिहार और बंगाल के बीच में तेलिया गढ़ी और सकरी गली नामक एक स्थान है जो दोनों के मध्यका फाटक कहलाता है। इस स्थान के एक ओर निढाल पर्वत और गुञ्जान काँटेदार अगम्य जंगल है और दूसरी ओर गंगा जो की प्रबल वेग से बहती हुई विस्तृत धारा

है। इस स्थान पर बंगाल की सेना से शत्रु को रोकने का कड़ा प्रयत्न किया गया पर एक महीने के युद्ध के अनन्तर शेरखाँ ने उस पर अधिकार कर लिया और बंगाल की राजधानी गौड़ की ओर बढ़ा। युद्ध में परास्त होकर सुलतान महमूद गौड़ दुर्ग में जा बैठा, जिसे शेरखां ने घेर लिया।

इधर जब हुमायूँ गुजरात से लौट कर आगरे में अपना समय व्यर्थ व्यतीत कर रहा था तब उसे शेरख़ाँ की बातों का पता लगा। उसने सन् १५३५ ई० में जौनपुर पर चढ़ाई की और चुनार को जाकर घेर लिया। उस दुर्ग का अध्यक्ष ग़ाज़ी खां सूरी था, जिसने दुर्ग की रक्षा का बहुत अच्छा प्रबन्ध किया था। बहादुर शाह गुजराती के एक तुर्की एंजिनियर रूमी ख़ाँ ख़ुदावन्द ख़ाँ ने हुमायूँ की सेवा स्वीकार करली थी, जिस पर इस दुर्ग के लेने का पूर्ण भार था। इसलिए उसने दुर्ग के बुर्ज आदि का पता लगाने का एक कठोर उपाय सोच निकाला। उसने अपने ख़िलाफ़त नामक एक हब्शी सेवक को कोड़ों से इतना पीटा कि उसके चिन्ह पीठ आदि पर उभड़ आये और तब उसे आज्ञा दी कि 'तुम अफगानों के पास जाकर कहो कि मैं रूमीखाँ का नौकर हूँ, जिसने मुझे बहुत पीटा है, इसलिये मैं भाग आया हूँ और आप लोगों की सेवा करना चाहता हूँ। इस प्रकार जब दुर्ग में चले जाना तब हर एक स्थान का अच्छी तरह निरीक्षण कर लौट आना।' खिलाफ़त ने आज्ञानुसार ही काम किया और अन्त में सभी ज्ञातव्य बातों का पता ले कर वह कुछ ही दिनों में लौट आया। रूमीखाँ ने उसकी बातें सुन कर और स्वयं दुर्ग का चारों ओर से निरीक्षण करके ठीक किया कि गंगाजी की ओर से ही दुर्ग कुछ निर्बल है, अतएव उसने उसी ओर के बुर्जों पर तोपखाने लगा दिये। अन्त में

जब इस प्रकार छ महीने बीत गये तब उसने कई नावों के कच्छे पर मचान बाँध कर उस पर तोपें चढ़ाई और दुर्ग पर आग बरसाया। साथ ही सैनिकों ने दुर्ग पर धावा किया पर दुर्ग वालों ने ऐसी वीरता दिखलाई कि वह कच्छा भी कुछ नष्ट हो गया और लगभग सात सौ शाही सैनिक मारे गये। पर अंत में दुर्ग वालों ने यह देखकर कि हुमायूँ दुर्ग लेने पर तुला हुआ है और इस समय कहीं से सहायता मिलती नहीं दिखलाई देती, प्राणों की रक्षा का वचन लेकर दुर्ग बादशाह को सौंप दिया। हुमायूँ ने चुनार में दोस्तबेगको नियुक्त किया। इसी समय बंगाल का सुलतान महमूद हुमायूँ की शरण में आया और उससे कुल समाचार सुन कर हुमायूँ ने बंगाल की ओर बढ़ने की आज्ञा दी।

जिस समय शेर खाँ गौड़ को घेरे हुआ था उसी समय बिहार में एक ज़मींदार ने विद्रोह किया, जिससे वह अपने पुत्र जलाल खाँ और एक विश्वस्त सरदार खवास खाँ को दुर्ग लेने की आज्ञा देकर स्वयं विद्रोह-दमन करने चला गया। जलाल खाँ और खवास खाँ ने दुर्ग को इस प्रकार घेर रक्खा था कि दुर्गवालों को बहुत कष्ट उठाना पड़ा। अंत में सुलतान महमूद सेना सहित युद्ध के लिये बाहर निकल आया। युद्ध में परास्त होकर महमूद भागा और जैसा ऊपर लिखा जा चुका है, हुमायूँ के पास जा कर उसने सहायता माँगी। जलाल खाँ ने गौड़ पर अधिकार कर लिया। शेर खाँ बिहार में शान्ति स्थापित कर लौटा और रास्ते में भागते हुये सुलतान महमूद का पीछा कर तथा उसे पुनः परास्त कर बंगाल से बाहर कर दिया और स्वयं गौड़ चला गया।

सन् १५३८ ई० में हुमायूँ बंगाल की ओर बढ़ा और

जहाँगीर कुली बेग को तेलिया गढ़ी पर अधिकार करने के लिये आगे भेजा। शेरखां इस समाचार को सुनकर स्वयं कोष तथा परिवार को लेकर झारखंड के पार्वत्य प्रदेश में चला गया और तेलिया गढ़ी की रक्षा करने को जलाल खाँ तथा खवास खाँ को भेज दिया। इन दोनों ने एकाएक असमय ही में धावा कर जहाँगीर को पराजित कर भगा दिया। पर हुमायूँ के स्वयं ससैन्य पहुँचने पर ये वहाँ से हट कर शेरखाँ के पास चले गये। हुमायूँ ने गौड़ पहुँच कर उस पर अधिकार कर लिया। यह स्थान उसे इतना अधिक पसंद आया कि वह इसका नाम जन्नताबाद रखकर लगभग छ मास तक वहां हरम में ही पड़ा भोगविलास में रत रहा।

इस बीच शेरखाँ ने रोहतास दुर्ग कपट कर के ले लिया। इस ने दो बार दूत भेज कर और कुरान की शपथ खाकर वहाँ के राजा हरिकृष्ण दास को इस बात पर बाध्य किया कि वह उसके घर की औरतों तथा बंगाल के कोष की रक्षाका भार तब तक के लिये स्वीकार करले, जब तक वह मुगलों को बंगाल से बाहर न कर दे। राजा ने कुछ तो विश्वास और कुछ लोभ में पड़कर उसकी बात स्वीकार कर ली। शेरखाँ ने एक सहस्र डोलियाँ बनवाईं और अच्छे अच्छे पर्दे डाल कर उस में दो दो सशस्त्र पठान बैठा दिये और पाँच सौ सिपाहियों के माथेपर मुलम्मे किये हुये पैसों के तोड़े लाद कर दुर्ग में भेज दिये। आगे की कुछ डोलियों में कुछ बूढ़ी स्त्रियाँ भी थीं, जिन्हें देख कर फिर औरों की खोज नहीं हुई। जब सब भीतर पहुँच गये तब वे एकाएक निकल कर फाटक पर टूट पड़े और उसे खोल कर शेरखाँ को ससैन्य भीतर ले लिया। राजा हरिकृष्ण दास दुर्ग के पीछे से भाग गये। इस प्रकार उस दुर्ग पर अधिकार

कर और कोष तथा परिवार को उस में सुरक्षित कर शेरखां हुमायूँ से युद्ध करने निकला।

जिस समय हुमायूँ गौड़ में आराम कर रहा था उस समय उसके भाई मिर्ज़ा हिंदाल ने आगरे में स्वतंत्र होकर बादशाह बनने की इच्छा प्रगट की। उसने शेख बहलोल को मरवा डाला और अपने नाम का खुतबा पढ़वाने लगा। मिर्ज़ा कामराँ, अस्करी तथा अन्य मिर्ज़ाओं के विद्रोह का समाचार भी फैल रहा था। इसलिए अन्त में हुमायूँ को आगरे लौटना उचित जान पड़ा। तब जहाँगीर कुली बेग को पाँच सहस्र सेना के साथ गौड़ में छोड़ कर वह आगरे को लौटा, पर मार्ग में आवश्यक सामग्री के अभाव तथा वर्षा के कारण बहुतेरे सिपाही और पशु मर गये। शेरखाँ ने अच्छा अवसर देख कर चौसा के पास ससैन्य मोर्चा बाँध कर हुमायूँ का रास्ता रोक लिया। तीन महीने तक दोनों सेनाएँ आमने सामने पड़ी रहीं। अंत में यह सन्धि हुई की बिहार से गढ़ी तक हुमायूँ का अधिकार रहे और बंगाल तथा रोहतास शेरखाँ के अधिकार में रहे। हुमायूँ ने अवसर देख कर और शेरखाँ ने शपथ खाकर यह संधि स्वीकार कर ली, जिससे मुग़ल निधड़क होकर नदी पर पुल बाँध कर पार उतरने की तैयारी करने लगे। रात्रि में शेरखाँ ने अपनी कुल सेना तैयार की और सवेरा होते ही एकाएक हुमायूँ की सेना पर टूट पड़ा, जिससे धोखे में पड़ी हुई उसकी सेना नष्ट भ्रष्ट हो गई और हुमायूँ स्वयं किसी प्रकार गंगा पार कर आगरे पहुँचा।

शेरखाँ यहाँ से लौट कर बंगाल गया और गौड़ घेर लिया। जहाँगीर कुली बेग से बराबर युद्ध होता रहा। अन्त में उसे कपट से बुलवा कर साथियों समेत मरवा डाला। इसके

अनन्तर शेरशाह की पदवी के साथ अपने नाम का खुतबा पढ़वाया और सिक्के ढलवाये। एक वर्ष में वह सब प्रबन्ध ठीक कर और ख़िज़िर ख़ाँ को बंगाल का हाकिम नियुक्त कर आगरे की ओर चला। शेरशाह ने कुछ सेना कुतुब खाँ के अधीन इटावा और कालपी लेने को आगे भेज दी थी, पर यादगार नासिर मिर्ज़ा आदि ने उससे युद्ध कर उसे परास्त किया और इसी युद्ध में कुतुब खाँ मारा भी गया। मिर्ज़ा कामराँ ने हुमायूँ का साथ नहीं दिया और अपनी सेना के साथ वह लाहौर लौट गया। इसके अनन्तर हुमायूँ ने एक लाख के लगभग सेना-एकत्र की और वह शेरशाह से युद्ध करने को चला। दोनों सेनाओं का सामना कन्नौज में हुआ। हुमायूँ की सेना ने गंगा के पार होकर नीची भूमि पर छावनी डाली थी, दोनों ओर से मोर्चे जमा लिये गये थे और छोटी मोटी लड़ाइयां भी होने लगी थीं। इसी समय वर्षा आ पहुँची और गंगा में बाढ़ भी आ गई। हुमायूँ ऊँची भूमिपर मोर्चा करने के विचार से सेना हटवा रहा था कि शेरशाह, जो पहिले ही से ऊँची भूमि पर था, अवसर पाकर सवार सेना के साथ एकाएक मुगलों पर टूट पड़ा, जो बिना युद्धही के भाग खड़े हुये। हुमायूँ ने गंगाजी में घोड़ा डाल दिया और किसी प्रकार पार होकर लाहौर का रास्ता लिया। जब शेरशाह पीछा करता हुआ वहाँ भी पहुँचा तब हुमायूँ सिन्ध होता हुआ हिन्दुस्तान के बाहर चला गया।

शेरशाह पंजाब पर अधिकार करके बालनाथ के पहाड़ी देश में पहुँचा, जहाँ अनेक बलूची सरदार उससे भेंट करने आये। उसने कई स्थानों पर दुर्ग बनवाये और रोहतास नामक बड़ा दुर्ग अटक के पास तैयार कराया। ख़वास खाँ को अमीरुल् उमरा की पदवी देकर हैबत खाँ नियाज़ी आदि अन्य सर-

दारों के साथ वहीं छोड़ा और स्वयं आगरे को लौट आया। यहाँ उसे समाचार मिला कि ख़िज़िर खाँ शरवानी, जिसे वह बंगाल में सूबेदार नियुक्त कर छोड़ गया था, सुलतान महमूद की पुत्री से विवाह कर स्वतंत्र बन बैठा है। यह समाचार पातेही वह तुरंत बंगाल की ओर चला और ख़िज़िर खाँ को, जो मिलने आया था, कैद कर बंगाल प्रांत कई भागों में बाँट दिया। इस प्रकार एक मनुष्य के हाथ में प्रबन्ध न रह कर कई मनुष्यों के हाथ में चला गया। काजी फ़ज़ीलत उपनाम फ़ज़ीहत को रोहतास दुर्ग का अध्यक्ष नियुक्त किया। इस प्रकार प्रबन्ध ठीक कर वह फिर आगरे लौट गया।

सन् १५४२ ई० में शेरशाह ने मालवा विजय करने की तैयारी की। उसके सरदार शुजाअतखाँ ने ग्वालियर के दुर्गाध्यक्ष अबुल् क़ासिम से, जो हुमायूँ की ओर से नियुक्त था, ग्वालियर का किला छीन कर उसपर अधिकार कर लिया था। शेरशाह जब मालवा में आया तब वहाँ का सूबेदार मल्लूखाँ, जो ख़िलजियों की ओर से वहाँ नियुक्त था, भेंट करने आया, पर कुछ दिन के अनन्तर डरकर भाग गया। तब शेरशाह ने हाजीखाँ को मालवा का हाकिम नियुक्त किया और शुजाअत खाँ का वहाँ जागीर देकर स्वयं रणथम्भौर की ओर गया। यह सुनकर मल्लूखाँ लौट आया, पर शुजाअत से परास्त होकर भाग गया। इस पर शेरशाह ने हाजीखां को बुला लिया और शुजाअतखां को मालवा का सूबेदार नियत कर दिया। रणथम्भौर दुर्ग का अध्यक्ष ख़ानख़ानाँ शर्वानी भी वही दुर्ग शेरखाँ को सन्धिपूर्वक सौंपकर स्वयं बासावर चला गया। वहीं उसकी विष से मृत्यु हो गई।

इसके बाद शेरशाह आगरे लौट आया और एक वर्ष तक

शान्ति स्थापन और राज्यप्रवंध में लगा रहा। पंजाब के रोहतास दुर्ग के अध्यक्ष हैबतखाँ को आज्ञा भेजी कि बलूचों से मुलतान छीन लिया जाय। उसने फ़तह खाँ बलूच को परास्त कर मुलतान पर अधिकार कर लिया। शेरशाह ने प्रसन्न होकर उसे आज़म हुमायूँ की पदवी दी। इसके अनन्तर सन् १५४३ ई० में उसने मालवे के रायसेन दुर्ग पर चढ़ाई की। यहाँ के अध्यक्ष पूर्णमल ने, जो सिलहदी का पुत्र था, चन्देरी पर आक्रमण कर उसके निवासियों को मार डाला था। उसके हरम में दो सहस्र मुसलमान स्त्रियाँ थीं। कुछ दिन के घेरे के उपरान्त शाहज़ादा आदिलखाँ और कुतुबखाँ नायब के अध्यक्ष होने पर सन्धि हुई और शेरशाह ने उसे १०० घोड़े ख़िलअत और नगद सोना भी दिया। वह दुर्ग छोड़कर स्त्री-परिवार और चार सहस्र राजपूत सैनिकों के साथ बाहर निकल आया। मीर सैयद रफ़ीउद्दीन सफ़वी इज़वाले ने, जिसे सिकन्दर लोदी ने मुक़द्दस (पवित्र) की पदवी दी थी, यह फ़तवा दिया कि वचन और प्रतिज्ञा को तोड़कर शेरशाह को इन सब काफ़िरों को काट डालना चाहिए। शेरशाह को बहाने की आवश्यकता थी ही, बस वह ससैन्य उन पर टूट पड़ा और पूर्णमल को सवंश और ससैन्य नष्ट कर दिया। स्त्रियाँ हाथियों के पैरों तले कुचलवा डाली गईं। फरिश्ता लिखता है कि इस युद्ध में राजपूतों ने जी तोड़ कर ऐसा युद्ध किया था कि रुस्तम और असफंदियार के काम भी खेल हो गये थे।

इस विजय के अनन्तर शेरशाह आगरे लौट आया और उसने नई सेना तैयार कर मारवाड़ पर चढ़ाई की। राणा संग्राम सिंह की मृत्यु हो जाने पर मारवाड़ नरेश मालदेव ही उस समय राजस्थान का अग्रगण्य राजा हो रहा था। वह भी

पचास सहस्र सवारों के साथ कूच कर अजमेर के पास शेर-शाह के सामने आ पहुँचा। शेरशाह बड़ी सतर्कता से आ रहा था। रास्ते में जहाँ जहाँ पड़ाव करता, वहाँ सेना के रक्षार्थ चारों ओर खाइयाँ खुदवाता था। पर जब मरुभूमि में पहुँचा तब वह इस रक्षा कार्य में असमर्थ रहा क्योंकि बालू में खाई खुद ही नहीं सकती थी। इसलिए सब सर्दारों को बुलाकर उसने आपस में सलाह की, पर किसी सर्दार ने कुछ सम्मति न दी। शेरशाह के पौत्र महमूदखाँ ने, जो आदिलखाँ का बड़ा पुत्र और सात वर्ष का था, बोरों में बालू भर कर दीवार बनाने का परामर्श दिया, जिसे सुन कर वह बहुत प्रसन्न हुआ और अपनी पगड़ी पहिराकर उसे युवराज बनाया। यह अपने चाचा इस्लाम शाह के हाथ मारा गया।

दोनों पक्ष की सेनाएँ एक महीने तक आमने सामने पड़ी रहीं। दोनों पक्ष वालों में किसी का साहस आक्रमण करने का नहीं होता था। इसी समय शेरशाह ने एक जाली पत्र इस प्रकार लिखवाया, जिससे यह ज्ञात होता था कि मालदेव के कुछ सरदार शेरशाह के पत्र का उत्तर लिख रहे हैं कि वे ठीक समय पर मालदेव का साथ न देकर और उसे कैद कर सुल-तान को सौंप देंगे, जिससे उसे युद्ध न करना पड़ेगा तथा वे लोग इस कार्य के बदले क्या क्या पुरस्कार पाएँगे। यह पत्र किसी प्रकार मालदेव के हाथ में पहुँचा दिया गया, जिससे वह अपने सर्दारों पर सन्देह करके मारवाड़ लौट जाने का प्रबंध करने लगा। उसके सर्दारों ने बहुत समझाया कि हम इस प्रकार के कादरोचित कर्म नहीं कर सकते और यह सब शेर-शाह की धूर्तता है, पर उससे कुछ लाभ नहीं हुआ। अंत में जिन सर्दारों पर यह दोष लगाया गया था उन सबने प्रतिज्ञा

की कि वे अपनी निजी सेनाओं को एकत्र कर शेरशाह से लड़ेंगे, चाहे विजय हो या मृत्यु। मालदेव इतने पर भी न रुका और रातों रात कूच कर मारवाड़ चला गया।

मालदेव का मंत्री कँधैयासिंह अन्य सरदारों तथा केवल चार सहस्र सैनिकों के साथ शत्रु पर रात्रि में आक्रमण करने की इच्छा से सेना से अलग हो गया। शेरशाह के सौभाग्य से ये रात्रि के अन्धकार में रास्ता भूल गये और आगे निकल गये। सवेरा होते होते उन्हें अपनी भूल का पता लगा तब वे लौट पड़े और 'शरीरं वा पातयामि' की नीति ठीक कर शत्रु के मोर्चों पर टूट पड़े, जो संख्या में अस्सी सहस्र से किसी प्रकार कम न थे। इनके कड़े धावे में पड़ कर अफ़ग़ानी सेना तितिर बितिर हो गई थी और शेरशाह परास्त होकर भागने ही को था कि जलाल खाँ हलवानी सजी सजाई नई सेना के साथ आ पहुँचा और राजपूतों पर जा टूटा। कई सरदार मारे गये और राजपूत पराजित होकर वीर गति को प्राप्त हुये। शेरशाह ने इस विजय से प्रसन्न होकर ईश्वर को धन्यवाद दिया और कहा कि मुझ से बड़ी भूल हुई थी कि एक मुट्ठी बाजरे के लिये हिन्दोस्तान का साम्राज्य खो चुका था। मारवाड़ नरेश "बिना बिचारे जो करे सो पाछे पछिताय" के अनुसार अपने वीर सेनानियों के मारे जाने के दुःख में मारवाड़ के पार्वत्य प्रदेश में जा बैठा।

शेरशाह यहाँ से लौट कर सन् १५४५ ई० में कालिंजर दुर्ग विजय करने को गया और उसे घेर लिया। यह दुर्ग भारत के अभेद्य दुर्गों में गिना जाता है। इसके अध्यक्ष ने पूर्णमल का वृत्तांत सुना था, इससे वह शेरशाह के षड्यंत्र में नहीं आया और दुर्ग की रक्षा की पूरी तैयारी की। शेरशाह ने बड़े परि-

श्रम और बुद्धिमानी से कई साबात (पटा हुआ मार्ग) बनवाये और खानें खुदवाईं तथा धावे भी बराबर होते रहे। शेरशाह स्वयं खड़ा होकर बारूद के ग्रिनेडों को दुर्ग पर फेंकवाता था। एक दिन उन में से एक ग्रिनेड दीवार से टकरा कर लौटा, जिसके टुकड़ों ने दूसरे ग्रिनेडों में गिरकर उन्हें भी उड़ा दिया। इससे शेरशाह और आस पास के और कई आदमी बेतरह जल गये। इतने पर भी वह मोर्चों के पास ही पड़ा रहा और होश आते ही बराबर अपने सैनिकों को दुर्ग विजय करने के लिये उत्साह दिलाता रहा। अंत में इधर ज्यों ही दुर्ग विजय हुआ त्यों ही उधर शेरशाह ने सर्वदा के लिये आँखें बन्द कर लीं। १२रबीउल्-अव्वल सन् ६५२ हिजरी (सं० १६०१ वि०) को यह घटना हुई। यह सहसराम में गाड़ा गया, जहाँ इसका मकबरा अब तक मौजूद है।

अब्दुल क़ादिर बदायूनी अपने इतिहास मुंतख़बुत्तवारीख़ में लिखता है कि 'मैंने एक अत्यंत विश्वासी पुरुष से सुना है कि जिस समय अंतिम दिन कालिंजर पर कड़े धावे हो रहे थे, दोनों पक्ष के वीर घोर युद्ध कर रहे थे, उस समय एक वीर पुरुष काला वस्त्र पहने और उस पर कवच धारण किये हुए तथा कालीही कलगी लगाये हुये अपने सैनिकों को उत्साह दिलाता हुआ दिखलाई पड़ा और एक गैलरी में घुस दुर्ग में चला गया। पीछे से बहुत खोजने पर भी उसका पता न चला। वहाँ के खाइयों के सैनिकों ने इस बात का समर्थन किया और यह भी कहा कि इस प्रकार के वस्त्रों से आच्छादित कई घुड़सवार भी इसी प्रकार दुर्ग में घुस कर गुप्त हो गये थे।'

शेरशाह ने पन्द्रह वर्ष तक सरदारी और पाँच वर्ष तक बादशाहत की। एक बार दर्पण में अपने पके बालों को देख-

कर उसने कहा था कि मुझे सन्ध्या के समय राज्य मिला। वह वहुत योग्य तथा कार्य शक्ति संपन्न था। उसने यौवन में अपने पिता की जागीर का प्रवंध करते समय राज्य प्रबन्ध-कला का अध्ययन किया था। वह जानता था कि वैसे अशांति के समय में विद्रोह का कठोरता से दमन कर शान्ति स्थापित करना ही कृषकों, व्यापारियों आदि को निज कर्मों में लगाने का प्रधान साधन है। कृषि कर्म तथा व्यापार की उन्नति ही जातीय तथा राष्ट्रीय उत्कर्ष का प्रथम तथा आवश्यक सोपान है। विद्रोह दमन के साथ साथ वह न्याय-तुला को सम रखने का भी कट्टर पक्षपाती था और कृषक तथा सैनिक दोनों के दोषों का स्वयं पता लगा कर निष्पक्ष रूप से विचार करता था। वादशाह होने पर भी उसने उसी प्रबन्ध-कौशल, कार्य शक्ति तथा कुशलता का परिचय दिया था और राज्य के प्रत्येक विभाग का समय बाँध कर नित्य प्रति सव का निरीक्षण करता था। प्रजा से नियम से अधिक कर उगाहनेवाले अफसरों तथा कृषकों पर अत्याचार करने वाले सैनिकों को वह इस प्रकार कठिन दंड देता था कि प्रजा उससे संतुष्ट रहती थी और नियमित रूप से कर देकर राजकोष परिपूर्ण रखती थी।

डाँकुओं से पथिकों तथा यात्रियों की रक्षा करने का उसने अच्छा प्रवंध किया था। डाँके के घटनास्थल के चारों ओर के ग्रामों के चौधरियों को, यदि वे डाँकुओं का पता न लगा सकें तो हानि की पुर्ति करनी पड़ती थी। जिस गाँव में डाँकू रहते पाये जाते थे, वहाँ के रहने वालों को जुर्माना देना पड़ता था। जिस ग्राम में खून हो जाय उसके चौधरी को हत्यारे का पता लगाना पड़ता था, नहीं तो उसेही प्राणदंड मिलता था। इन कारणों से ग्रामीण लोग ही पुलिस का कार्य करते थे और

अपने ग्रामों में यात्रियों की पूर्ण रक्षा करते थे। मृत व्यापारियों का सामान उसके उत्तराधिकारियों के लिए सुरक्षित रखा जाता था। उसके राज्य में स्थान स्थान पर चुङ्गी नहीं लगती थी, केवल पश्चिमोत्तर सीमा पार रोहतास में और पूर्वोत्तर सीमा पर सकरी गली में ली जाती थी। इस प्रकार के आन्तरिक कर बंद कर दिये गये थे। इसके सिवा बिक्री के समय भी कर लिया जाता था और उसने यह भी आज्ञा निकाली थी कि कोई अफसर बाज़ार दर से कम पर कोई सामान न खरीदे।

शेरशाह ने कई दुर्गों का निर्माण कराया था, जिनमें रोहतास और दिल्ली के दुर्ग, जो हुमायूँ के दीनपनाह और फिरोज़ाबाद के बीच में तीन कोस के घेरे में पत्थर का बनवाया गया था, प्रसिद्ध हैं। उसने बंगाल के सोनार गाँव से पंजाब के रोहतासगढ़ तक और आगरे से बुर्हानपुर तक सड़क बनवाई थी, जो अब ग्रैण्डट्रङ्क रोड कहलाती है। इसके दोनों ओर छाया के लिये वृक्ष लगवाये गये थे। पाँच पाँच मील की दूरी पर सरांय, पक्का कुँआ और मसजिद बनवाये थे, जहाँ हिन्दू मुसलमान दोनों को आश्रय मिलता था। घोड़े आदि पशुओं के लिये भी चारा का प्रबन्ध रहता था। इसी सड़क से घोड़ों की एक डाक का भी प्रबन्ध किया गया था।

शेरशाह ने सेना विभाग का भी अच्छा प्रबन्ध किया था। राज्य की ओर से एक स्थायी सेना भी तैयार की थी, जिसमें डेढ़ लाख सवार और २५००० पैदल थे। जागीरदारों की सेना के घोड़ों के दागने की प्रथा भी चलाई, जिससे थोड़े घुड़सवारों को रखकर वे अधिक का वेतन नहीं ले सकते थे। सीमान्त के दुर्गों की सेनाओं को भी दूसरे वर्ष बदलता रहता था। स्थानिक

बलवे आदि वहीं के जागीरदारों को दमन करने पड़ते थे।

शेरशाह के राज्य काल में, यद्यपि वह थोड़े ही दिनों तक रहा था, प्रजा अत्यंत सुखी रही, चारों ओर शान्ति बनी रही और वाणिज्य तथा व्यापार की बराबर उन्नति होती रही।

शेरशाह के द्वितीय पुत्र जलालखाँ ने इसलाम शाह की पदवी धारण कर कई बड़े बड़े सर्दारों तथा सेना की सहायता से गद्दी पर अधिकार कर लिया और अपने बड़े भाई आदिल खाँ को पत्र लिखा कि आप दूर थे और राज्य में अशांति फैलने की आशंका थी इसलिए मैंने इसे सँभाल रखा है आपके आने पर उसे सौंप दूंगा। अन्त में दोनों भाई दोनों ओर से मिलने चले और मार्ग में भेंट कर साथ ही आगरे आए। कपटाचरण करने की इच्छा रखते हुए भी इसलाम को अवसर नहीं मिल सका और आदिलखाँ भी इस्लाम ही को गद्दी पर बैठा कर स्वयं अपने जागीर वियानः को लौट गया। दो महीने बाद इसलाम ने आदिलखाँ पर गाज़ी महाली की अधीनता में सेना भेजी। आदिलखाँ ने भी युद्ध की तैयारी की पर आगरे के पास युद्ध में परास्त होकर वह भट्टा की ओर चला गया। इसके अनंतर इसलाम ने अपने सर्दारों पर शंका कर उनमें से पन्द्रह बीस अमीरों को उनके पुत्रों के साथ ग्वालिअर दुर्ग में कैद कर बारूद से उड़वा दिया। इन्हीं में आदिल खाँ का पुत्र महमूद भी था, जिसने बोरों में बालू भर कर दीवाल बनाने की राय दी थी।

इस प्रकार के बर्ताव से बिगड़कर पंजाब में हैबतखाँ आज़म हुमायूँ की अध्यक्षता में नियाज़ी सर्दारों ने बलवा कर दिया। बलवाइओं में आपस ही में विरोध हो गया, जिस से इसलाम शाह के वहाँ ससैन्य पहुँचने पर घोर युद्धोपरांत वे

परास्त हो गए। इसलाम ने सन् १५४७ ई० में मालवा पर चढ़ाई की और शुजावलखाँ को परास्त कर भगा दिया। इसके बाद उसने ईसाख़ाँ सूर को उज्जैन में और मुबारिज़खाँ सूर को संभल में बीस बीस हज़ार सवार देकर नियुक्त किया तथा स्वयं आगरे लौट गया। नियाज़ी सर्दार गण दूसरी बार सैन्य तैयार कर सूरी सर्दार ख़्वाजा वैस शरवानी को धानकोट के पास परास्त कर सरहिंद तक आये पर यहाँ परास्त होकर फिर भाग गए। इसके अनंतर ये बलवाई काश्मीर विजय करने के विचार से वहाँ गए पर एक घाटी में शत्रु के हाथ सब के सब मारे गए। इसलाम शाह इसी विद्रोह को दमन करने के लिए सन् १५४८ से सन् १५५० ई० तक तीन वर्ष पंजाब में रहा और उसने मानकोट, रशीद कोट आदि पाँच दुर्ग बनवाए। इसी बीच इसने गक्खरों को परास्त कर अपने अधीन कर लिया।

इसी समय कामराँ काबुल में परास्त होकर इसलाम के पास सहायतार्थ आया था, पर इसका यहाँ अच्छा सत्कार नहीं हुआ प्रत्युत् वह पीछे से कैद कर दिया गया। यहाँ से यह किसी प्रकार भाग कर सुलतान आदम गक्खर के पास सुलतान पुर गया, जो रोहतास से तीन कोस पर है। उसने हुमायूँ से उसे न मारने का वचन लेकर उसे सौंप दिया।

नियाज़ी विद्रोह के अनंतर खवास खाँ पहाड़ी दुर्ग में जा बैठा था जिस पर इसलाम ने सुलेमान किर्रानी के भाई ताज खाँ को भेजा। सन् १५५१ ई० में अंततः दुर्ग न ले सकने पर इसलाम के आज्ञानुसार उसने खवास ख़ाँ को उसके प्राणरक्षा का वचन देकर बुलवाया और धोखे से मारडाला। इसी वर्ष एक इन्हीं के बनाए हुए सर्दार इकबालखाँ की तलवार

से एक बदमाश ने इसलाम पर चोट की पर वह मारा न गया। इस प्रकार के कई प्रयत्न इसको मारने के लिए हुए पर यह बच गया। इस तरह इसका शक अफ़ग़ानों पर बढ़ता जाता था और वह उन्हें नष्ट करने का उपाय करता रहता था। इसका कारण यों कहा जाता है कि गक्खरों से युद्ध करने में समय बहुत लग गया और सैनिकों को वेतन मिलने में रुकावट पड़ने लगी थी। अफ़ग़ान दुर्ग बनाने से बहुत घबड़ाते थे और इसी से वे इसके विरुद्ध हो गए थे।

मीर सैय्यद मुहम्मद जौनपुरी अपने को 'महदी' कहकर घोषित करने लगा था और अब्दुल नियाज़ी उसका शिष्य होकर बियाना आया। हसन का लड़का शेख अलाई, जो मक्के हो आया था, इसका शिष्य हो गया और यह महदवी पंथ ज़ोर पकड़ने लगा। इसलाम ने इसको दमन करना उचित समझकर सन् १५५० ई० में अब्दुल तथा अलाई दोनों को दरबार में बुलाकर खूब पिटवाया, जिससे पहिला तो उस पंथ को त्याग कर फ़क़ीर हो गया और दूसरा मर गया। उसका शव हाथी से कुचलवा डाला गया। कहा जाता है कि इसी कुकर्म के फलस्वरूप इसलामशाह का अन्तिम समय कष्टमय रहा।

हुमायूँ के भारत पर आक्रमण करने का समाचार मिलते ही पच्छाघात फोड़े से पीड़ित होते भी यह तुरन्त ससैन्य एक सप्ताह में पंजाब पहुँचा पर हुमायूँ के काबुल लौट जाने पर यह भी ग्वालियर लौट आया। अन्त में इसी फोड़े के कारण सन् १५५३ ई० में इसकी मृत्यु होगई।

यह योग्य तथा कड़ा हाकिम था। इसने अपने पिता के अच्छे नियमों को जारी रखा और कुछ को और उन्नत किया।

इसने शेरशाह के बनवाए राजमार्ग पर और भी सराय तथा मंदिर बनवाए, जहाँ हिंदुओं तथा मुसलमानों को खाना मिलता था। घोड़ों के दागने तथा नगद वेतन देने की प्रथा दृढ़ की। न्याय की ओर भी इसने दृष्टि की और क़ाज़िओं के फैसलों को स्वयं देखता था। इसने बहुत से नियम बनवाकर लिखवा रखे थे जिसके अनुसार न्याय होता था। यह कवि और कवियों का आश्रयदाता था तथा इसकी स्मरणशक्ति अच्छी थी और कुशल समालोचक भी था।

इसकी मृत्यु पर इसका पुत्र फीरोजशाह गद्दी पर बैठा, पर तीन दिन बाद ही वह अपने चाचा तथा मामा मुबारिज ख़ाँ के हाथ मारा गया, जो शेरशाह के भाई निज़ामख़ाँ का पुत्र था और जिसकी बहिन इसलाम शाह को ब्याही थी। इसलाम को पहिले ही से इस बात का भय था पर फीरोज़ की माता का अपने भाई पर विश्वास था और वह कभी ऐसा नहीं सोच सकी थी। इस प्रकार अपने भतीजे तथा भांजे को मार कर मुबारिज सुलतान मुहम्मद आदिल उपनाम अद्‌ली पदवी से गद्दी पर बैठा। इस अन्याय के कारण लोक में इसका नाम 'अँधली' अधिक प्रसिद्ध था। यह स्वयं व्यसनी और दीर्घसूत्री था तथा इसने हेमू बक्काल को अपना प्रधान मंत्री नियुक्त कर सब राज कार्य उसे सौंप दिया था। इन कारणों से अफ़ग़ान सर्दार बिगड़ गए और जगह जगह स्वतंत्र नवाब बन बैठे। बंगाल में किर्रानी वंश स्वतंत्र हो रहा था और जब ताज ख़ाँ किर्रानी अद्‌ली की सेना से परास्त होकर बंगाल गया तब अद्‌ली भी वहाँ सेना सहित पहुँचा। हेमू के अथक परिश्रम और सैन्य संचालन के कौशल से अंत में अद्‌ली की विजय हुई। इधर

समाचार मिला कि शेरशाह के चचेरे भाई ग़ाज़ीख़ाँ सूर के पुत्र इब्राहीमख़ाँ सूर ने, जिसे अदली की बहिन ब्याही थी, बयानः और हिन्दून की जागीर में स्वतंत्रता की घोषणा कर दी है तथा उसके भेजे हुए सर्दार ईसाख़ाँ नियाज़ी को परास्त कर भगा दिया है। अदली ने यह सुनकर सुलेमान किर्रानी से संधि कर इब्राहीम पर चढ़ाई की पर उसी के सर्दार इससे मिल गए और इसे आगरे में सुलतान इब्राहीमशाह के नाम से गद्दी पर बैठा दिया। अदली ग्वालियर से कोष लेकर चुनार चला गया।

इसी प्रकार अदली का एक और बहनोई अहमदख़ां सूर पंजाब के सरदारों को मिलाकर सुलतान सिकन्दर शाह सूर के नाम से स्वतंत्र हो गया और सेना एकत्र कर दिल्ली की ओर बढ़ा। इब्राहीम ने भी खूब रुपये बाँटते हुए अस्सी सहस्र सेना एकत्र की जिससे डरकर सिकन्दर ने, जिसके पास केवल बारह सहस्र सेना थी, संधि प्रस्ताव किया। परंतु अंत में युद्ध ही हुआ, जिसमें एक प्रकार सिकन्दर ही की विजय हुई। इब्राहीम चार सौ सैनिकों के साथ इटावे चला गया। सिकन्दर भी पीछा करता हुआ पहुँचा, जहाँ उसे हुमायूँ के भारत आने का समाचार मिला। इससे सिकन्दर पंजाब की ओर लौटा। इब्राहीम यहाँ से अदली से युद्ध करने को काल्पी गया पर हेमू से परास्त होकर बयानः भाग गया। हेमू भी पीछा करता वहाँ पहुँचा और दूसरी बार उसे उसने परास्त कर दुर्ग घेर लिया। पर बिहार की ओर से मुहम्मदख़ाँ सूर की चढ़ाई होने पर अदली ने इसे काल्पी बुला लिया। इब्राहीम ने इसका पीछा किया, पर दो बार परास्त होकर भट्टा चला गया। वहाँ के राजा रामचंद से युद्ध में

परास्त होकर उसी के शरण में रह गया पर यहाँ से मालवा के नियाजी अफ़ग़ानों के बुलाने पर वहां गया। यहाँ भी युद्ध का उपयुक्त अवसर न देख कर उड़ीसा गया जहां से सुलेमान किर्रानी ने उसे बुला कर मार डाला।

हेमू ने काल्पी पहुँचते ही सेना ठीक कर उससे पंद्रह कोस पर छपरखत्ता में पड़ी हुई मुहम्मदख़ाँ सूर की सेना पर ऐसे वेग से धावा किया कि वह पूरी तरह से पराजित होकर पूर्व की ओर भाग गया। अदली ने चुनार पहुँचकर हेमू को भारी सेना देकर हुमायूँ से युद्ध करने भेजा। इसके जाने के कुछ ही दिन बाद मुहम्मदख़ाँ गौड़ी के पुत्र सुलतान बहादुर ख़िज़िर ख़ाँ ने पिता का बदला लेने को अदली पर चढ़ाई की, जिससे युद्ध कर अदली मारा गया। ख़िज्रख़ाँ भी इसी युद्ध में मारा गया।

अदली ने केवल तीन वर्ष राज्य किया। गान तथा नृत्य विद्याओं में ऐसा कुशल था कि प्रसिद्ध गवैया तानसेन तथा मालवा के बाज़ बहादुर इसे गुरु के समान मानते थे।

४. परिच्छेद

भारत से निर्वासन—फारस की सहायता—काबुल विजय

शेरशाह से द्वितीय बार कन्नौज के युद्ध में परास्त होने पर हुमायूँ का साहस बिलकुल टूट गया और उसे अपने भाइयों से सहायता की आशा दूर खुल्लमखुल्ला वैमनस्य न करने की भी आशा नहीं रह गई थी। कामराँ आगरे से उसी समय लाहौर चला गया था जब हुमायूँ ने वहाँ से युद्धार्थ कन्नौज की ओर प्रस्थान किया था। पराजय के उपरांत मिर्ज़ा हिंदाल की रक्षा में हरम की स्त्रियाँ लाहौर भेजी गईं और हुमायूँ स्वयं भी अन्य बचे हुए लोगों के साथ वहीं चले गए। लाहौर में चगत्ताई वंश के सभी मनुष्य तथा उनके साथ वाले एकत्र हुए। हुमायूँ, कामराँ, अस्करी और हिंदाल चारों भाई भी मिले और बराबर सम्मति होती रही पर पाँच महीने बीत जाने पर भी सब एक राय न हो सके। अंत में जब समाचार मिला कि शेरशाह कूच करता हुआ व्यास नदी पार कर रहा है तब सभी को अपने अपने रास्ता लेने की सूझी। कहा जाता है कि उस दिन दो लाख आदमियों ने लाहौर छोड़ा था।

हुमायूँ की बहुत इच्छा थी कि वह काबुल होता बदख्शाँ जाय और उन प्रांतों से सेना एकत्र कर पुनः अपने पैतृक राज्य पर अधिकार प्राप्त करे पर कामराँ ने ऐसा नहीं होने दिया। वह सोच रहा था कि हुमायूँ कहीं काबुल पर अधिकार न करले और इसीलिए वह स्वीकृति नहीं दे रहा था। अन्त में उसके हठ से निरुपाय होकर हुमायूँ ने सिंध के मार्ग से बिलूचिस्तान होते फारस जाना निश्चित किया। कामराँ दलबल सहित काबुल चलागया और मिर्ज़ा अस्करी भी

इसी के साथ गया। यादगार नासिर तथा मिर्ज़ा हिंदाल भी हुमायूँ का साथ छोड़कर मुलतान चले गए पर अकेले जाना असुविधाजनक समझकर पुनः हुमायूँ के साथ होगए। मुलतान में एक दिन ठहर कर हुमायूँ अच्छ पहुँचा और वहाँ नदी पार कर सब सिंध प्रांत में पहुँच गए। अन्त में यहाँ से भी कूच कर भक्कर पहुँच मिर्ज़ा शाह हुसेन समंदर के चार बाग़ में पड़ाव डाला। यहाँ हुमायूँ को लगभग आठ महीने व्यतीत करने पड़े पर सिंध के शाह हुसेन अर्ग़ून ने बहाने ही करते हुए सब समय बिता दिया और कुछ भी सहायता नहीं दी। अन्त में कोरा उत्तर भी दे दिया कि उससे कुछ भी सहायता नहीं मिल सकती।

इसी बीच हुमायूँ एक दिन मिर्ज़ा हिंदाल के डेरे पर गए और वहाँ हमीदा बानू बेगम को देखकर उससे विवाह करना निश्चित किया। यह मीर बाबा दोस्त की पुत्री थी और इसका भाई ख़्वाजा मुअज्जम था। पातर स्थान में, जहाँ हिंदाल ठहरा हुआ था, सन् १५४१ ई० के सितम्बर महीने में उससे विवाह कर बादशाह बक्खर लौट गए। कंधार के सूबेदार करचाख़ाँ ने मिर्ज़ा हिंदाल तथा यादगार नासिर को लिख भेजा कि यदि शीघ्र आओ तो यह दुर्ग तुम्हें सौंप दें। यह समाचार मिलते ही मिर्ज़ा हिंदाल वहाँ चला गया और उस पर अधिकार कर लिया। यादगार भी जाने की तैयारी कर रहा था कि हुमायूँ ने मीर अबुलबका को उसे रोकने के लिए भेजा पर यह रास्ते ही में शाहहुसेन के सैनिकों द्वारा मारा गया। यादगार यह समाचार मिलने पर कन्धार नहीं गया और हुमायूँ उसे भक्कर घेरे रहने को छोड़कर दुर्ग सेहवन लेने चला गया। पर यहाँ

भी छ सात महीने तक व्यर्थ समय विताया और उस दुर्ग को भी न ले सका। इसका प्रायः सब सामान नष्ट होगया और लगभग दस सहस्र मनुष्यों को इसके शत्रुओं ने पकड़ पकड़ कर समुद्र में डुबो दिए। तब वह बक्खर लौट आया परंतु यहाँ यादगार नासिर शाह हुसेन के बहकाने से विद्रोही होगया और हुमायूँ को बक्खर में नहीं आने दिया। तब हुमायूँ जैसलमेर होता हुआ राजा मालदेव से सहायता प्राप्त करने के लिए जोधपुर की ओर गया। उसने कुछ धन तो भेज दिया पर विशेष सहायता नहीं कर सका क्योंकि शेरशाह से वह परास्त हो चुका था। हुमायूँ ने राजा मालदेव की चित्तवृत्ति जानने के लिए अतकाखाँ को उसके पास भेजा था। उसने कहला भेजा कि मालदेव की सहायता का विचार छोड़कर आगे बढ़िए क्योंकि वह स्यात् सेना भेज कर आपको कैद न कर ले। यह समाचार सुनकर राजपूत सेना के पहुँचने की डर से हुमायूँ यहाँ से सिंध की ओर फिर लौट गया।

उस रेगिस्तान में अनेक प्रकार का कष्ट उठाते हुए ये लोग अमरकोट पहुँचे जहाँ के राणा प्रसाद ने हुमायूँ को स्वागत कर दुर्ग में ठहराया। यहाँ इसने कुछ दिन आराम से व्यतीत किया। इस राणा के पिता को शाह हुसेन ने मार डाला था, इस लिए उसका बदला लेने को वह ससैन्य साथ जाने को तैयार हुआ। हुमायूँ ने अपने साले ख़्वाजा मुअज्ज़म की रक्षा में महल की स्त्रियों को वहीं दुर्ग में छोड़कर बक्खर को कूच किया। इस यात्रारंभ के तीसरे दिन १५ अक्तूबर सन् १५४२ ई० (४ रजब सन् ९४९ हि०) को अकबर का अमरकोट में जन्म हुआ, जिस शुभ समाचार को तर्दी मुहम्मद ख़ाँ ने

बादशाह तक पहुँचाया। यहाँ से हुमायूँ ने जून् पर्गने में पहुँच कर उस पर अधिकार कर लिया और वहीं छ महीने रहे। अमरकोट से हरम वालों को भी यहीं बुला लिया जहाँ उसने पहिली बार अपने पुत्र का मुख देखा था। इस प्रकार दिन बीत रहे थे और सर्दार गण एक एक कर भाग रहे थे। राणा भी अपनी सहायक सेना सहित भाग गया तब बैरामखाँ की सम्मति से, जो गुजरात की ओर से इधर ही आ मिला था, फारस जाने का विचार ठीक कर कंधार का रास्ता लिया।

मिर्ज़ा हिंदाल के कंधार पर अधिकार कर लेने पर कामराँ ने उसे उससे लेलेने का विचार किया और ससैन्य पहुँच कर उसे घेर लिया। चार महीने बीतने पर अंत में हिंदाल ने वह दुर्ग कामराँ को इस शर्त पर दे दिया कि उसे ग़ज़नी दुर्ग मिल जाएगा पर कामराँ ने कंधार अस्करी को सौंप दिया और हिंदाल को ग़ज़नी न देकर लमग़ानात देने लगा। इससे क्रुद्ध होकर हिंदाल एकान्तवास में रहकर फ़क़ीरी करने लगा।

हुमायूँ जब कूच कर शालमस्तान पहुँचा तब उसे समाचार मिला कि कामराँ के आज्ञानुसार अस्करी मिर्ज़ा उसे कैद करने के लिए ससैन्य आ रहा है। इस समाचारदाता का नाम जुई बहादुर उज़बेग था जो कासिम हुसेन सुलतान का भेजा हुआ आया था। यह वृत्तांत सुनते ही हुमायूँ हमीदा बानू बेगम तथा बाईस मनुष्यों के साथ सवार हो एराक की ओर भागे। एक वर्षीय बालक अकबर को मुहम्मद अतका ख़ाँ की रक्षा में छोड़ गए कि ऐसे कठोर यात्रा में उसे हानि पहुँचेगी। हुमायूँ के उधर जाते ही मिर्ज़ा अस्करी दो सहस्र सवारों के साथ आ पहुँचा और सब को साथ कंधार लिवा गया। उसने अपनी स्त्री सुलतान बेगम को अकबर के पालने का भार दिया।

हुमायूँ कई दिनों में गर्मसीर पहुँचा जहाँ उसके कई सर्दार उससे आ मिले। इससे यात्रा का कुछ प्रबंध ठीक कर वह खुरासान की ओर चला। कई दिनों बाद वह हलमंद नदी के पार उतर कर फारस राज्य में पहुँचे। शाहतहमास्प के बड़े पुत्र सुलतान मुहम्मद मिर्ज़ा ने इनका स्वागत किया। यहाँ से प्रत्येक पड़ाव पर आवश्यक वस्तुएँ मिलने लगीं। प्रत्येक सूबेदार मार्ग में इनका आदर करता था। इस प्रकार यात्रा करते यह पुलाकसुरीक पहुँचे जहाँ दोनों शाहों की भेंट हुई। मार्ग के सभी स्थानों की प्रसिद्ध इमारतों को हुमायूँ देखते जाते थे। अपने पिता बाबर के समान ही इसने भी हिरात में खूब भ्रमण किया था। जौहर आफ्ताबची ने अपनी पुस्तक में इन सब का अच्छा वर्णन किया है।

शाह तहमास्प ने अपने तीनों भाई बहराम मिर्ज़ा, अलकास मिर्ज़ा और सोम मिर्ज़ा को स्वागत के लिए भेजा था और जब ये हुमायूँ को साथ लेकर वहाँ पहुँचे तब शाह भी स्वागत करने आए। मिलने के अनंतर शाह ने प्रश्न किया कि 'आपने अपना साम्राज्य किस प्रकार खोया'। तब हुमायूँ ने उत्तर दिया कि 'भाइयों की शत्रुता के कारण अंत में उसे राज्य खोकर भागना पड़ा।' शाह के भाइयों को इस उत्तर से विशेष कष्ट हुआ और बहराम मिर्ज़ा ने शाह को यह भी याद दिलाया कि यह हुमायूँ उसी बाबर का पुत्र है जिसने कई सहस्र क़िज़िल-बाश सैनिकों को सहायतार्थ लिवा जाकर उज़बेगों से मरवा डाला था। इस समाचार के याद दिलाने पर शाह कुछ कुरुख हुआ था पर शाह की बहिन शाह सुलतान बेगम के समझाने पर, जिसे वह महदी के समान बुद्धिमान समझता था, उसने अपना क्रोध दबा लिया। इस बीच बातचीत में हुमायूँ के कुछ

शैरों को सुन कर भी वह उस पर बहुत प्रसन्न हुआ। उसने हुमायूँ को खूब अहेर खेलाए, जिनमें हमीदा बानू बेगम, शाह की बहिन तथा बूआ आदि स्त्रियाँ भी साथ रहती थीं।

'दिन भर मजलिस होती रही। भोजन के समय सर्दारों की स्त्रियों ने खड़े होकर सेवा की और शाह की हरमवालियों ने शाहज़ादा सुलतानम (शाह तहमास्प के पिता की बहिन) के आगे भोजन परोसा तथा हर प्रकार के कारचोबी आदि वस्त्र से हमीदा बानू बेगम का सत्कार किया। शाह स्वयं आगे से जाकर रात्रि के निमाज़ तक बादशाह (हुमायूँ) के पास रहे। इसके अनंतर जब सुना कि हमीदाबानू बेगम गृह पर आगईं तब उठकर अपने महल को चले गए। यहाँ तक कृपा और सुव्यवहार किया।' (गुलबदन बेगम-कृत हुमायूँ नामा, हिंदी पृष्ठ १२६)

फारस के दरबार में जिस प्रकार हुमायूँ का आदर सत्कार हुआ था उसी प्रकार कुछ ऐसी घटनाएँ भी हुई थीं जो उसकी मर्यादा के बिलकुल विरुद्ध थी। फारस का राजवंश शीआ था और हुमायूँ सुन्नी मुसलमान था तथा शाह ने इससे शीआ होजाने का बहुत हठ किया था यहां तक कि हुमायूँ को दिखाव में शीआ धर्म के अनुकूल काम करना पड़ता था।

एक बार हुमायूँ के दो साथियों ने अपने स्वामी के कुछ लाल चुरा लिए, जो बहुमूल्य थे और जिसे उसने अवसर पर काम में लाने के लिए रख छोड़े थे। इन रत्नों की थैली केवल हुमायूँ और उनकी स्त्री दो ही जानते थे। ख़्वाजा मुअज़्ज़म ने उन चोरों का पता लगाया जिससे क्रुद्ध होकर वे दोनों शाह के पास चले गए और उससे हुमायूँ की अयोग्यता आदि का हाल कह कर उसके रत्नों की थैली का भी वृत्तांत कह

डाला। शाह हुमायूँ के पास इतने बहुमूल्य रत्नों का होना सुनकर चिंतित हुआ और उसका मन हुमायूँ की ओर से फिर गया। हुमायूँ ने यह हाल देखकर अपने कुल रत्न शाह के पास भेज दिए। ग्वालिअर वाला बड़ा हीरा एक सीप की डिब्बी में रख कर और उसके चारों ओर अन्य रत्नों को एक रिकावी में सजाकर बैरामख़ाँ के हाथ शाह के पास भेज दिया, जिससे शाह जो प्रसन्न होगए। अन्त में शाह ने दस सहस्र क़िज़िलबाश सेना हुमायूँ की सहायता के लिए देना इस शर्त पर स्वीकार किया कि कंधार विजय होने पर वह दुर्ग पारसी सेना को सौंप दिया जायगा। इस सेना का सेनापति नाम मात्र के लिए शाह का ढाई वर्ष का पुत्र मुराद था पर उसका वास्तविक सेनापति बिदाग़ ख़ाँ अफ़शार था।

हुमायूँ सहायक सेना मिलने पर आर्द बेल और तब्रेज़ होता मशद पहुँचा तथा यहाँ दरबार किया। क़िज़िलवाश सेना ने दूसरे मार्ग से पहुँच कर गर्मसीर प्रांत पर अधिकार कर लिया। पाँच दिन के अनंतर हुमायूँ भी वहाँ पहुँचा और उसने कंधार घेर लिया। वहाँ के अध्यक्ष मिर्ज़ा अस्करी ने हुमायूँ के ससैन्य आनेका समाचार सुनतेही अकबर को कामराँ के पास काबुल भेज दिया और युद्ध के लिये तैयारी की। लगभग डेढ़ महीने के घेरे के अनंतर अस्करी ने ४ दिसंबर सन् १५४५ ई० को दुर्ग दे दिया और क्षमाप्रार्थी हुआ। हुमायूँ ने इस विजय के पहिले ही बैराम ख़ाँ को कामराँ के पास भेजा था। कामराँ ने भी अपनी बूआ खानज़ादः बेगम को क्षमा याचना के लिए कंधार भेजा था परंतु वह कंधार-विजय के अनंतर काबुल जाती समय क़बलचाक़ नामक स्थान में पहुँच कर ऐसी बीमार हुई कि तीन दिन बाद उसकी मृत्यु होगई। कामराँ

यह सब समाचार सुनकर काबुल छोड़ हज़ारा की ओर अहेर के बहाने चला गया। हुमायूं ने कंधार दुर्ग तीन दिन बाद बिदाग़खाँ को सौंप दिया पर दो तीन अमीरों को छोड़कर बाकी सब स्वदेश लौट गए। जाड़े में हुमायूँ ने अपनी सेना के लिए दुर्ग में स्थान माँगा पर उसने स्थान देना अस्वीकार किया जिससे मिर्ज़ा अस्करी आदि कई सर्दार भागने को तैयार हो गए। उन्हीं दिनों शाह मुराद की मृत्यु हो गई। मिर्ज़ा हिंदाल और यादगार नासिर के सामने बिदाग़ खाँ ने पैगम्बरों को गाली दी, जिस पर यादगार ने उसे ऐसी तीर मारी कि वह मर गया। कंधार के निवासियों ने पारसियों के अत्याचार से बिगड़कर बलवा कर बहुतों को मार डाला, तब अंत में हुमायूँ ने दुर्ग पर अधिकार कर लिया और उसे बैराम खाँ को सौंप दिया।

हिंदाल और यादगार नासिर दोनों ही ने कुसमय पर हुमायूँ का साथ नहीं दिया था और दोनों हो काबुल में अपना दिन काट रहे थे। कामराँ के हज़ारा की ओर प्रस्थान करने पर दोनों ने एक राय निश्चित की और उसी के अनुसार याद-गार ने काबुल से निकलकर कंधार का रास्ता लिया। कामराँ यह समाचार सुनते ही काबुल लौट आया और हिंदाल को यादगार को लिवा लाने के लिए भेजा। दोनों अब साथ होकर कंधार चले गए और हुमायूँ के साथ होगए।

हुमायूँ ने कंधार का प्रबंध ठीक कर काबुल को ओर प्रस्थान किया और तकिया हिमार पहुँचकर पड़ाव डाला। कामराँ भी युद्ध के लिए सामान ठीक कर सामने आपहुँचा पर समय के फेर से अब उसके सभी सर्दार भागकर हुमायूँ के पास चले आये। इसकी सेना क़ासिम बर्लास की अधीनता में

ख़्वाजा मुअज़्ज़म, हाजी महम्मदखाँ आदि द्वारा परास्त हो चुकी थी। कामराँ ने क्षमा माँगने के लिए ख़्वाजा खाविंद महमूद और ख़्वाजा अब्दुल् ख़ालिक़ को भेजा था और हुमायूँ ने भी कामराँ के आने पर उसे क्षमा करना स्वीकार कर लिया था पर शंका के कारण रात्रि होते ही वह काबुल चला गया। वहाँ से अपने पुत्र, पुत्री, स्त्री आदि को साथ लेकर ग़ज़नी भागा पर जब उसमें नहीं जाने पाया तब अपने श्वशुर मिर्ज़ा शाह हुसेन अर्गून के राज्य सिंध की ओर चला गया। हुमायूँ हिंदाल को उसका पीछा करने के लिए सेना सहित भेजकर स्वयं काबुल गया। वहाँ उसने अपने पुत्र अकबर को प्रायः तीन वर्ष बाद देखा। हमीदा बानू बेगम के आने पर अकबर की सुन्नत हुई और कुछ दिन हुमायूँ ने ऐश आराम मजलिस में व्यतीत किए।

इसी बीच हुमायूँ ने मिर्ज़ा सुलेमान को फ़र्मान भेजकर बुलाया पर उसने आना अस्वीकार कर दिया और लिखा कि कामराँ ने हमसे शपथ लेली है इसलिए बिना युद्ध के हम अधीनता स्वीकार नहीं कर सकते। तब बादशाह ने बदख्शाँ पर चढ़ाई करना निश्चित किया। उसने यादगार नासिर को, जिसने भागने का प्रयत्न किया था, गला घोंटकर मरवा डाला और मिर्ज़ा अस्करी को अपने साथ लिवाता गया। अंदराब के एक ग्राम तीरगिराँ के पास सुलेमान से युद्ध हुआ जो परास्त होकर भाग गया। इसके अनंतर हुमायूँ किशम में आकर ठहरे, जहाँ ऐसे बीमार हुए कि उन्हें वहाँ तीन महीने ठहरना पड़ा। चार दिन तक बेहोश रहे। इनकी स्त्री माह चूचक बेगम ने बड़ी सेवा की थी और जिस समय बेहोशी दूर हुई उस समय हुमायूँ को उसकी स्त्री ही उसके मुख में अनार का रस टपकाती दिखलाई पड़ी थी।

हुमायूँ की बीमारी का हाल सुनकर कामराँ अपने श्वशुर का सहायता से अच्छी सेना लेकर काबुल पर चढ़ दौड़ा और ग़ज़नी में ज़ाहिद बेग को मारकर काबुल पर अधिकार कर लिया। उसने वहाँ के अध्यक्ष मुहम्मद अली मामा को मार डाला। बालाहिसार से बादशाही बेगमों को निकाल कर उसे लूट लिया और उन सर्दारों के घर द्वार गिरवा दिए जिन्होंने उसका साथ छोड़ दिया था। उसके इन अत्याचारों को सुनकर बादशाह ने बदख्शाँ मिर्ज़ा सुलेमान को सौंपकर काबुल का मार्ग लिया। हुमायूँ काबुल के इधर ही थे कि कामराँ की भेजी हुई सेना ने ज़ुहाक और गोरबंद में उसका रास्ता रोका। बादशाह के हरावल ने इनलोगों को हटाते हुए डीह अफ़गानाँ के पास मिर्ज़ा के हरावल को, जो शेर अफ़गन के अधीन था, कड़े युद्ध पर पूर्णतया परास्त किया। हुमायूँ का हरावल हिंदाल के अधीन था और क़राचा खाँ ने द्वंद्व युद्ध में शेर अफ़गन को पराजित कर पकड़ लिया था। बहुत से क़ैदी मारे गए और बचे कैद किए गए। हुमायूँ ने काबुल पहुँचकर उसे घेर लिया और यह घेरा सात महीने तक रहा। दोनों ओर से खूब युद्ध हुआ। घेरे के अंत काल ही में मोर्चे से एक दिन कामराँ पर किसी ने गोली चलाई, जिससे उसने अकबर को दिवाल पर सामने ला बैठाने की आज्ञा दी, तब गोली छोड़ना बंद कर दिया गया। इधर से सैनिकों ने उसके जवाब में मिर्ज़ा अस्करी को मोर्चे के सामने ला खड़ा किया। अंत में जब कामराँ ने देखा कि वह काबुल की अधिक रक्षा नहीं कर सकता तब उसने २७ अप्रैल सन् १५४७ ई० को संधि का प्रस्ताव किया पर बादशाह के इस कथन पर कि वह स्वयं आकर क्षमा प्रार्थी हो, वह सशंकित होकर नहीं आया और उसी रात्रि को बदख्शाँ की ओर भाग

गया। तबकाते अकबरी लिखता है कि ख़िज़्र ख़्वाजा स्थान के ओर की दीवाल तोड़ कर बाहरवाले कुछ सर्दारों के इशारे पर निकला था। हुमायूँ ने यह सुनतेही हाजी महम्मद कोका को पीछा करने के लिए भेजा। इसने शीघ्र पहुँच कर उसे घेर लिया पर कामराँ के एकही स्त्री के दूध पीने के भाई चारे का याद दिला कर छुटकारे की प्रार्थना करने पर उसने उसे छोड़ दिया। जौहर पीछा करनेवाला का नाम मिर्ज़ा हिंदाल लिखता है।

कामराँ यहाँ से भाग कर हज़ारा की ओर गया और वहाँ के जाति वालों की सहायता से ज़ुहाक और बामियान जाकर अपने एक सर्दार शेर अली से मिला जिसके पास कुछ सेना थी। कुछ और सैनिक एकत्र कर ग़ोर गया और वहां के अध्यक्ष मिर्ज़ा बेग बर्लास को परास्त कर उसका सामान लूट लिया। तब यहाँ से बलख़ जाकर वहाँ के हाकिम पीर मुहम्मद ख़ाँ से सहायता माँगी। पीर मुहम्मद बलख से सहायता कर ने आया और कामराँ का गोर और बकलान पर अधिकार हो गया। इस के बाद पीर मुहम्मद के लौट जाने पर कामराँ ने बदख़्शाँ के और सब भाग पर अधिकार कर लिया तथा मिर्ज़ा सुलेमान असमर्थ होकर कुलाब चला आया।

क़राचः ख़ाँ, मुसाहिब ख़ाँ, मुबारिज़ ख़ाँ, बापूस आदि कामराँ के कई सर्दार भाग कर हुमायूँ से आ मिले थे और इस के प्रतीकार में कामराँ ने इन लोगों के घर द्वार संतान आदि को बहुत हानि पहुँचायी थी। इन सब ने इधर हुमायूँ की बहुत सेवा भी की थी पर उस समय हुमायूँ से इन लोगों ने ऐसे प्रस्ताव किए थे कि जो मानने योग्य नहीं थे। इन सब का एक प्रस्ताव यह था कि ख्वाजा ग़ाज़ी को मार कर ख्वाजा

कासिम को प्रधान मंत्री बनाया जाय। हुमायूँ के इन सब प्रस्तावों के न मानने पर उन सब ने एक मत होकर बद-ख्शाँ का मार्ग लिया और कामराँ से जा मिले। बादशाह ने भी कामराँ को दमन करना आवश्यक समझ कर यात्रा की तैयारी की।

बादशाही सेना का हरावल हिंदाल की अध्यक्षता में तालिकान के पास पराजित हुआ पर बादशाह के स्वयं युद्ध स्थल पर पहुँचने से कामराँ दुर्ग में जा बैठा। तालिकान घेर लिया गया और दो मास के अनंतर कामराँ ने, जब उसे उज़बेगों से भी सहायता न प्राप्त हुई तब, अधीनता स्वीकार कर हुमायूँ के नाम खुतबा पढ़वाया। भागे हुए अपने सर्दारों को भी उसने हुमायूँ के पास भेज दिया, जिन्हें उसने क्षमा कर दिया। रात्रि में कामराँ दुर्ग से निकल कर भागा और वह वेगी नदी के किनारे ठहरा हुआ था, जहाँ से मिर्ज़ा सुलेमान का पुत्र इब्राहीम इसे कैद कर बादशाह के पास ले आया था। तबकाते अकबरी लिखता है कि कामराँ स्वयं पश्चात्ताप कर बादशाह से मिलने आया और हुमायूँ ने भी उसे क्षमा कर दिया। कामराँ को कोलाबा जागीर में दिया गया, जिससे वह बहुत ही असंतुष्ट था। मिर्ज़ा अस्करी को भी उसके साथ जाने की आज्ञा मिली और क़रा-तगीं उसे जागीर में दी गई। मिर्ज़ा सुलेमान को किश्म में छोड़ कर बादशाह काबुल लौट आये और बलख पर चढ़ाई करने के लिए तैयारी करने लगे।

काबुल में एक वर्ष से अधिक व्यतीत कर हुमायूँ ने बलख की ओर सेना सहित कूच किया। मिर्ज़ा कामराँ और मिर्ज़ा अस्करी को बुलाने के लिए भी संदेशा भेजा गया था पर वे दोनों नहीं आये। बादशाह के बदख्शाँ पहुँचने पर सुलेमान

और हिंदाल अपनी अपनी सेना सहित आ मिले। बादशाह ने मिर्ज़ा इब्राहीम को बदख्शाँ में छोड़ कर ऐबक दुर्ग जाकर घेर लिया और कुछ दिन में उस पर अधिकार हो गया।

मिर्ज़ा कामराँ के युद्ध में योग न देने से सेना के प्रायः सभी सर्दार इस शंका से भयभीत हो रहे थे कि वह काबुल जाकर उनके परिवारवालों को कहीं कष्ट न पहुँचाये। युद्ध समिति भी बैठी पर हुमायूँ के जोर देने से बलख़ की चढ़ाई जारी रखी गई। सेना बलख पहुँची। शाह मुहम्मद सुलतान तीन सौ सवारों के साथ सेना को पड़ाव डालने में रोकने के लिए आया पर परास्त होकर चला गया। दूसरे दिन पीर मुहम्मद स्वयं आबिदख़ाँ के पुत्र अब्दुल् अज़ीज़ख़ाँ तथा हिसार के सुलतान के साथ युद्धार्थ आया पर पूर्णतया परास्त होकर दुर्ग में लौट गया। मिर्ज़ा कामराँ का अभीतक पता नहीं था और इस कारण चगत्ताई सर्दारगण घबड़ाए हुए थे। उन लोगों ने निश्चय किया कि बलख नदी पार न की जाय प्रत्युत् कुछ पीछे हटकर दर्रागज़ में, जो काबुल के रास्ते पर एक दृढ़ स्थान है वहाँ, पड़ाव डाला जाय। इस प्रकार बलख़ भी कुछ समय बीतने पर टूटेगा और काबुल का समाचार भी मिलता रहेगा। सर्दारों के बहुत अनुनय विनय पर हुमायूँ ने इस प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया और उस ओर कूच की आज्ञा दे दी। सेना में यह समाचार विदित नहीं था और वहाँ से हटते ही यह गप्प उड़ी कि उज़बेगों की भारी सेना बुखारा से आन पहुँची है, जिससे बादशाह काबुल भाग रहे हैं। बस, सारी सेना में भगदड़ मच गई। उज़बेगों ने बादशाही सेना को इस प्रकार भागते देख कर पीछा किया और मिर्ज़ा सुलेमान तथा हुसेन कुलीख़ाँ के

अधीन चंदावल सेना को परास्त भी कर दिया। लगभग एक सहस्र उज़्बेग वहाँ पहुँचे जहाँ हुमायूँ स्वयं कुछ सैनिकों के साथ खड़े अपने कर्म के इस वैचित्र्य का तमाशा देख रहे थे। घोर युद्ध हुआ और उज़्बेगों के पहिले सवार को हुमायूँ ने स्वयं अपने भाले से मार गिराया। अन्त में किसी प्रकार लड़ते भिड़ते बादशाह निकल गए और कुशलपूर्वक काबुल पहुँच गए।

मिर्ज़ा कामराँ कोलाब ही में थे जिस पर शुक्रअली बेग ने चढ़ाई की। यह कामराँ की स्त्री माह बेगम का भाई और सुलतान वैस क्िबचाक का पुत्र था। इन दोनों में कुछ झगड़ा हो गया जिससे यह चढ़ाई हुई थी। कामराँ ने अस्करी को सेना सहित भेजा पर वह दो युद्धों में परास्त होकर लौट आया। इसी बीच मिर्ज़ा सुलेमान, जिसे माह बेगम की बहिन हरम बेगम ब्याही थी, कामराँ से बिगड़ गया क्योंकि उसने उसकी स्त्री पर कुदृष्टि डाली थी और उस पर चढ़ाई कर दी। कामराँ अपने में युद्ध करने की शक्ति न देखकर रोस्तक चला गया। मार्ग में उज़्बेगों ने इसका सब सामान लूटलिया और वह उस दुर्दशा में ज़ुहाक और बामियान की ओर रवाना हुआ। हुमायूँ ने यह समाचार सुनकर उसका मार्ग रोकने को सेना भेजी। कराचः ख़ाँ आदि फिसादी सर्दारों ने कामराँ को लिख भेजा कि वह ज़ुहाक ही की ओर जाय और वहाँ वे युद्ध के समय बादशाह का साथ छोड़कर उसके साथ होजाएँगे। कामराँ बलख के पराजय का समाचार तथा सर्दारों के सहायता देने का वचन मिलने पर युद्ध की तैयारी करने लगा। हुमायूँ ने क़राचः ख़ाँ की सम्मति से अपने धायभाई हाजी मुहम्मद को थोड़ी

सेना के साथ सर्तान दर्रे पर अधिकार करने को भेजा और स्वयं क़िबचाक़ दर्रे को पार कर घाटी में उतरा। कामराँ के ससैन्य आने का समाचार सुनकर वह दर्रे में घुसा ही था कि वे वलवाई सर्दार कामराँ से जामिले। इस प्रकार सशक्त हुए कामराँ ने हुमायूँ की थोड़ी सेना पर आक्रमण कर दिया और खूब युद्ध हुआ। कई सर्दार मारे गए और हुमायूँ के सिर पर गहरी चोट आई। बाबा बेग कोलाबी ने यह चोट की थी, जिस पर बादशाह के मुडकर उसकी ओर देखने पर वह घबड़ा गया। चोट गहरी आई थी पर भाले से शत्रुओं को बराबर हटाते हुए कई आदमियों के सहारे यह युद्ध से हट आये। इन्हों ने ऊपरी कपड़ा, जो रक्त से तर था, अपने दास को दे दिया था पर भागते समय वह उसे फेंक गया, जिसे कोई कामराँ के पास ले गया। उसने हुमायूँ को मारा गया समझ कर अपने को बादशाह घोषित कर दिया और काबुल पर तृतीय तथा अन्तिम बार पुनः अधिकार कर लिया।

हुमायूँ इस चोट के अनन्तर बदख्शाँ गए, जहाँ मिर्ज़ा हिंदाल, मिर्ज़ा सुलेमान तथा मिर्ज़ा इब्राहीम अपनी सेनाओं के साथ आ मिले। लगभग डेढ़ महीने यहाँ ठहरकर हुमायूँ ने काबुल जाना निश्चय किया और अपने सब सर्दारों को एकत्र कर अधीनता की शपथ खाने को कहा। इस पर हाजी मुहम्मद कोका ने प्रस्ताव किया कि इस कार्य में बादशाह भी सम्मिलित होकर साथ देने की शपथ लें। अन्त में सबने शपथ खाई और बादशाह ने उस दिन व्रत कर उस घटना की महत्ता और भी बढ़ा दी। इसके अनन्तर हुमायूँ ने काबुल की ओर प्रस्थान किया और उक्त स्थान के उत्तर गोरबंद

की घाटी के मुहाने पर युद्ध हुआ। युद्ध के पहिले हुमायूँ ने शाह सुलतान को कामराँ के पास समझाने के लिए भेजा था पर कराचः ख़ाँ आदि के विरोध करने पर संधि न हो सकी। ख़्वाजा अब्दुस्समद कामराँ का साथ छोड़कर हुमायूँ के पास चला आया। युद्ध में कामराँ हार कर मनद्रुद के पहाड़ों में भाग गया। घायल कराचःख़ाँ पकड़ा जाकर कंबर अली पहाड़ी के हाथ मारा गया, जिसके भाई को उसने कन्धार में प्राणदंड दिया था। मिर्ज़ा अस्करी भी इस युद्ध में पकड़ा गया और ख्वाजा जलालुद्दीन महमूद की रक्षा में मिर्ज़ा सुलेमान के यहाँ भेज दिया गया। इसने मक्का जाने की आज्ञा माँगी थी, इस लिए सुलेमान ने उसे बलख पहुँचा दिया। वहाँ से मक्का जाते समय मार्ग में दमिश्क और मक्का के बीच सन् १५५८ ई० में इसकी मृत्यु हो गई।

बादशाह काबुल पहुँचे और वहाँ एक वर्ष सुखपूर्वक व्यतीत किया था कि मिर्ज़ा कामराँ के फिर सैना एकत्र करने का समाचार मिला। जिन अफ़ग़ानों की शरण में कामराँ रहता था, वे सब युद्ध के लिए तैयार होने लगे। कुछ सर्दार भी हुमायूँ का साथ छोड़कर कामराँ के पास चले गए, जिससे उसके पास पंद्रह सहस्र सेना इकट्ठी होगई। हाजी मुहम्मद ख़ाँ कोका भागकर ग़ज़नी चला गया। इन कारणों से कामराँ की इन तैयारियों को रोकने के लिए हुमायूँ लमगानात गया जिससे कामराँ सिंध की ओर चला गया। हुमायूँ काबुल लौट आया तब उसने पुनः उस ओर से चढ़ाई की। हाजी मुहम्मद ने कामराँ को लिख भेजा कि यदि वह ग़ज़नी आवे तो वह उसकी अधीनता स्वीकार कर लेगा। परन्तु हुमायूँ ने बैराम ख़ाँ को यह वृत्तांत लिख भेजा, जिससे कामराँ के

आने के पहिले ही उसने वहाँ पहुँच ग़ज़नी पर अधिकार कर लिया और हाजी को लेकर काबुल गया। कामराँ यह सुनकर पेशावर लौट गया। हाजी फिर भागगया और बैराम ख़ाँ कई सर्दारों के साथ पीछा करने के लिए भेजा गया। अन्त में वह पुनः पकड़कर लाया गया और क्षमा किया गया।

कामराँ अभी तक इन्हीं अफ़ग़ानों के बीच में रहता था, जिनका सर्दार मुहम्मद खलील था और वे युद्ध के लिए बराबर तैयारी कर रहे थे, इसलिए हुमायूँ ने उस पर चढ़ाई करना निश्चित किया। यात्रारंभ के पहिले उसने हाजी मुहम्मद और उसके भाई दोनों को प्राणदण्ड दे दिया और तब मिर्ज़ा हिंदाल को साथ लेकर कामराँ पर चढ़ाई की। कामराँ ने तूमान के एक गाँव चारयार में रात्रि में कंप पर धावा किया, जिसमें मिर्ज़ा हिंदाल मारा गया। यह घटना २० नवम्बर सन् १५५१ ई० की शनिवार की है। उस समय हिंदाल की अवस्था तेतीस वर्ष की थी। अबुलफ़ज़ल लिखता है कि हिंदाल के द्वारा मारे गए एक अफ़ग़ान के भाई जरिंदा ने विष से बुझी हुई तीर चलाकर इसे मार डाला था। कामराँ अन्त में परास्त होकर ऐसा भागा कि भारत में सलीमशाह सूरी की शरण में चला आया। हुमायूँ अफ़ग़ानों को दमन कर भारत पर चढ़ाई करने के प्रयत्न में लगा।

मिर्ज़ा कामराँ का सूरी दरबार में कैसा स्वागत हुआ था, इसका विवरण अब्दुलक़ादिर बदायूनी यों लिखता है कि 'जब मिर्ज़ा कामराँ दरबार में पहुँचा तब कुछ अफ़ग़ान सैनिकों ने उसे पकड़कर इसलाम शाह के सामने लाकर कहा कि मिर्ज़ा हाज़िर है। इसलाम ने कुछ देर तक उधर

ध्यान नहीं दिया और तब उसकी ओर घूमकर उसको मौखिक स्वागत मात्र कहकर अपने खेमे के पास खेमा दिया। कामराँ की उसके पदमर्यादा के अनुसार प्रतिष्ठा न हुई और जब वह दरबार में जाता तब अफग़ान सर्दार गण हँसी में कहते कि 'मोरो मीआयद' (मोरो आता है)। कामराँ ने एक दिन दरबार ही में किसी अनुचर से मोरो शब्द का अर्थ पूछा जिसने उसका अर्थ 'बड़ा सर्दार' बतलाया। इस पर कामराँ ने कहा कि इसलाम शाह बड़ा मोरो है और शेरशाह उस से भी बड़ा मोरो था। इसके अनन्तर फिर किसी ने उस प्रकार की हँसी नहीं की। इसलाम ने एक दिन कामराँ से कुछ शैर कहने के लिए कहा, जिस पर उसने निम्न लिखित शैर कहा—

गर्दिशे गर्दूने गर्दां गर्दन आरा गर्द कर्द।
बर सरे साहब तमीज़ाँ नाकिसाँ रा मर्द कर्द॥

अर्थ—घूमनेवाले आकाश के एक चक्र ने बड़े लोगों को धूल में मिला दिया। शीलवान लोगों का कुत्सित पुरुषों को सर्दार बना दिया।

इसलाम शाह यह शैर सुनकर क्रुद्ध हो गया और उसे कैद कर दिया। कामराँ ने एक ज़मींदार की सहायता से उस कैदखाने से छुटकारा पाया और सुलतान पुर में, जो रोहतास से तीन कोस पर है, आदम गक्खर की शरण में गया। इसने हुमायूँ से इसके प्राणरक्षा का वचन लेकर इसे सौंप दिया। कामराँ बड़ी नम्रता के साथ हुमायूँ के पास मिलने आया जिसने उसे अपने पास एक ही गद्दी पर बिठाकर उसका बहुत सत्कार किया। चार दिन के अनन्तर इसका विचार आरंभ हुआ। हुमायूँ के साथ के सभी छोटे बड़े

अफ़सरों ने एक मत होकर प्रार्थना की कि 'देशद्रोही का सिर नीचा करना ही उत्तम है।' हुमायूँ अभी भी भ्रातृ-संबंध का विचार नहीं छोड़ रहा था, तब अन्त में सबने हुमायूँ के आज्ञानुसार लिखकर अपनी सम्मति दी। सबको एक मत देखकर अन्त में उसे कामराँ को अन्धा कर देने की आज्ञा देनी पड़ी। उसने अली दोस्त बारबेगी, सैयद मुहम्मद त्रिकना, गुलामअली शशअंगुश्त (छाँगुर), सुलतानअली और जौहर आफ़्ताबचो को हिंदुस्तान की ओर यात्रा आरंभ करने के बाद रोहतास पहुँचकर इस कार्य पर नियुक्त किया था। इन पाँच में गुलामअली ने १७ अगस्त सन् १५५३ ई० को नश्तर देकर कामराँ को अन्धा किया था। कामराँ इसके अनंतर मक्के भेजा गया। इसके साथ इसकी स्त्री माह चूचक बेगम अर्गून तथा अन्य बेगमें भी चार बार हज्ज करने गई थीं। ५ अक्तूबर सन् १५५७ ई० को कामराँ की मृत्यु हुई और इसके सात महीने बाद इसकी यह स्त्री भी जाती रही।

कामराँ बहुत ही उद्योगी तथा वीर पुरुष था। यह अवसर नहीं चूकता था। यह दानी तथा शीलवान भी था। कई बार अकबर इसके हाथ में पड़ गया पर उसने कभी उसे किसी प्रकार की हानि नहीं पहुँचाई। इन सभी भाइओं में यह एक विशेषता थी कि वे आपस में सर्वदा लड़ते रहे पर कभी किसी ने ए . दूसरे को प्राण से मारने का यत्न नहीं किया, यद्यपि ऐसे अवसर कई बार सभी को मिल चुके थे। कामराँ अपने मत का पक्का था और बराबर विद्वानों, कवियों आदि का सत्संग रखता था। यह स्वयं भी अच्छी कविता करता था। पहिले यह अपने राज्य में अंगूर की खेतीही को नष्ट करना चाहता था पर बाद को स्वयं भारी मद्यप हो गया। जिस

प्रकार हुमायूँ के इतिहास के कई लेखक हो गए हैं उस प्रकार कामराँ की जीवनी पर एक ने भी प्रकाश नहीं डाला है, नहीं तो इसकी विचार प्रणाली, उदारता आदि का अवश्य बहुत कुछ पता मिलता। हाँ, यह अवश्य कहा जा सकता है कि हुमायूँ भाग्यवान था और कामराँ नहीं था। पहिला बार बार राज्य खोकर उसे पा जाता था और दूसरा उसे प्रयत्न से प्राप्त कर भी खो देता थो। हुमायूँ की भाग्यमत्ता का दृढ़तम सबूत उसका जगतप्रसिद्ध पुत्र अकबर ही था।

५. परिच्छेद

भारत पर आक्रमण-साम्राज्य-स्थापन-मृत्यु

इस प्रकार, जैसा कि इसके पहिले के परिच्छेद में लिखा जा चुका है, एक एक करके सभी भाईओं का अंत हो जाने पर हुमायू ने भारत पर चढ़ाई करना निश्चित किया। रोहतास से कामराँ को अंधा करने की आज्ञा देने तथा उसके अंधे होने का समाचार पाने पर हुमायूँ ने काश्मीर विजय करने का विचार किया। लोगों की इस सूचना पर कि मार्ग में एक पहाड़ी दुर्ग का अध्यक्ष 'बिराना' है जो अवश्य रास्ता रोकेगा और जिसे विजय करना अत्यंत कठिन है, हुमायूँ ने कुछ भी ध्यान नहीं दिया और अपनी युद्ध यात्रा आरंभ कर दी। इस चढ़ाई का समाचार पाकर इसलामशाह सूरी ससैन्य पंजाब आया, जिससे हुमायूँ की सेना में अशांति फैल गई। काश्मीर की चढ़ाई के विरोधी सर्दार तथा सैनिक गण सब एक साथ काबुल लौट गए और जो बचे थे वे भी अब उस चढ़ाई के विरुद्ध राय देने लगे तब अंत में हुमायूँ काबुल लौटे और सिंध नदी पार कर पेशावर पहुँचे। इस स्थान का नाम पहिले 'विक्रम' था, जिसके दुर्ग को इसने फिर से बनवाया। सैनिकों के सहयोग से यह दुर्ग शीघ्र तैयार हो गया और हुमायूँ सिकंदर खाँ उजबेग को इस दुर्ग का अध्यक्ष नियुक्त कर काबुल चले गए।

कंधार के दुर्गाध्यक्ष बैराम खाँ के विषय में द्वेष के कारण कुछ सर्दारों ने हुमायूँ से ऐसी उल्टी सीधी बातें समझाईं कि उसका मन उसकी ओर से खट्टा हो गया और वह सेना सहित कंधार की ओर चला। बैराम खाँ स्वयं बादशाह से मिलने के

लिए दुर्ग से बाहर निकल आया और नियमानुकूल सेवा में उपस्थित हुआ, जिससे उसकी स्वामीभक्ति तथा दुष्टों की दुष्टता साफ मालूम हो गई। इतने पर भी हुमायूँ की इच्छा बैराम ख़ाँ से कंधार लेकर उसे मुनइम खाँ को सौंपने की थी, पर मुनइम ख़ाँ की सम्मति से ऐसा नहीं किया और उस पद पर बैराम ख़ाँ ही को नियत रहने दिया। जमींदावर की अध्यक्षता तर्दी बेग से लेकर अलीकुली खाँ सीस्तानी के भाई बहादुर खाँ को दी गई। यह प्रबंध ठीक कर हुमायूँ काबुल लौट आया और भारत पर चढ़ाई करने को सेना सज्जित करने लगा।

सूरी वंश का दूसरा सम्राट् इस्लामशाह मर चुका था और उसके पुत्र को मार कर उसका चचेरा भाई तथा साला गद्दी पर बैठ चुका था। इसके भाई तथा सर्दार गण विद्रोही हो गए थे और भारत में अशांति फैली हुई थी। ऐसे सुअवसर को पाकर भारत–विजय की इच्छा से ज्योतिष–प्रिय हुमायूँ शकुन की खोज में निकले। उसने यह निश्चय किया कि अहेर के लिए जाते समय मार्ग में जो प्रथम तीन आदमी मिलेंगे उन के नाम से शकुन निकाला जायगा। पहिले मनुष्य का नाम दौलत ख्वाजः था और दूसरे का मुराद ख्वाजः था। तीसरे का, हुमायूँ की भविष्यवाणी के अनुसार ही, सआदत ख्वाजः नाम निकला। तीनों का अर्थ संपत्ति, इच्छा तथा सफलता है। इस प्रकार तीन नाम मिल जाने से सभी प्रसन्न थे और भारत की चढ़ाई में विजय प्राप्त होने का सब को विश्वास हो गया।

अंततोगत्वा यथाशक्ति पूरी तैयारी करके हुमायूँ ने १५ नवंबर सन १५५४ ई० को भारत की ओर यात्रा आरंभ कर दी

और शाहज़ादा मुहम्मद हकीम मिर्ज़ा को मुनइमखाँ की अभि-

आवश्यकता में काबुल का प्रबंध ठीक रखने के लिए छोड़ दिया। हुमायूँ अकबर को साथ लेकर शांति पूर्वक पेशावर पहुँच गया, जहाँ बैराम खाँ भी उससे आ मिला। सिंध नदी पार कर हुमायूँ ने बैराम खाँ को सेनापति नियुक्त किया और उसे खिज्र ख्वाजः खाँ, तर्दीबेग खाँ, सिकंदर सुलतान उज़बेग, अलीकुली ख़ाँ सीस्तानी आदि सर्दारों के साथ ससैन्य आगे भेजा। शेरशाह के बनवाए हुए रोहतास दुर्ग का अध्यक्ष तातारख़ाँ कासी अपने में उस दुर्ग की रक्षा की शक्ति न देखकर दिल्ली भाग गया। हुमायूँ बराबर कूच करता हुआ लाहौर पहुँच गया और बिना युद्ध ही वहाँ तक उसका अधिकार हो गया। अफ़ग़ान सर्दारगण बराबर भागते चले गए। बैराम ख़ाँ यहाँ से आगे जालंधर और सरहिंद तक गया तथा इन सभी स्थानों पर मुग़ल अधिकार हो गया। यहाँ समाचार मिला कि देपालपुर में शहबाज़ ख़ाँ और नासिर खाँ की अधीनता में अफ़ग़ान सेना इकट्ठी हो रही है। इसका पता लगते ही हुमायूँ ने शाह अबुल मआली और अलीकुली ख़ाँ शैबानी सीस्तानी (जो बाद को ख़ानेज़माँ के नाम से प्रसिद्ध हुआ) को उस सेना पर भेजा जिस ने वहाँ पहुँचकर अफ़ग़ानों को पूर्णतया पराजित कर भगा दिया।

सिकंदर शाह सूरी ने, जो दिल्ली में भारत-सम्राट् बना हुआ था, तातार ख़ाँ तथा हैबत ख़ाँ अफ़ग़ानों के अधीन तीस सहस्र सेना मुग़लों पर भेजी। बैराम ख़ाँ शत्रु की अधिक संख्या देखकर नहीं घबड़ाया और अपने अधीनस्थ कुल सेना को जालंधर में एकत्र कर युद्ध के लिए वह आगे बढ़ा। सतलज नदी पार कर यह माछीवाड़ा में शत्रु के सामने पहुँच गया। संध्या हो चली थी पर उभय पक्ष उत्साह के साथ भिड़ गए। शत्रुगण मुग़लों की शर-वर्षा से भयभीत होकर पास के एक ग्राम

में भाग गए और अग्नि के बराबर गिरने से वहाँ के फूस की छाया वाले घरों में आग लग गई जिसके प्रकाश में साफ़ दिखलाने हुए शत्रुओं को मुग़ल धनुर्धारियों ने अपना खूब निशाना बनाया। अंत में इस मार से घबड़ाकर शत्रु भाग गए और मुग़लों की पूर्ण विजय हुई। हाथी घोड़े और बहुतसा सामान मुग़लों के हाथ आया। बैराम ख़ाँ ने हाथियों को हुमायूँ के पास लाहौर भेज दिया और स्वयं माछीवाड़ा ही में ठहरा रहा। बादशाह ने भी इस विजय से प्रसन्न होकर बैराम ख़ाँ को ख़ानख़ानाँ की पदवी दी।

इस पराजय के समाचार को सुनकर सुलतान सिकंदर शाह सूर ने अस्सी सहस्र सेना, तोपखाना तथा हाथी लेकर इसका बदला लेने के लिए सरहिंद की ओर प्रस्थान किया। सरहिंद पहुँचकर इसने पड़ाव डाला और उसके चारों ओर खाई खुदवाई। बैराम ख़ाँ ने भी सरहिंद दुर्ग दृढ़ कर हुमायूँ को सहायता के लिए लिखा जिसने शाहज़ादा अकबर के साथ कुछ सेना तुरंत आगे भेजी और स्वयं भी पीछे वहाँ पहुँचकर दुर्ग में जा बैठा। दोनों ओर की सेनाओं में बराबर छोटा मोटा युद्ध होता रहता था। अंत में युद्ध करना निश्चय कर मुग़ल सेना इस प्रकार सुसज्जित हुई कि उसके हरावल का अध्यक्ष अकबर हुआ और उसके एक ओर बैराम ख़ाँ खानखानाँ तथा दूसरी ओर सिकंदर ख़ाँ, अबुल्लाख़ाँ उज़बेग, शाह अबुल्मआली, अलीकुली ख़ाँ तथा बहादुर ख़ाँ ससैन्य नियुक्त हुए। घोर युद्ध के अनंतर अफ़ग़ान सेना परास्त होगई और सिकंदर शाह सिवालिक पहाड़ों में भाग गया। शत्रुओं के सिरों का ढेर कर मीनार बनाया गया, जिसका नाम बैराम ख़ाँ ने 'सरे मंज़िल' रखा था।

हुमायूँ ने सिकंदर खाँ उज़बेग को दिल्ली पर अधिकार करने भेजा। वहाँ के अफ़ग़ान रक्षक भाग गए और इसने पहुँचते ही उस पर अधिकार कर लिया। हुमायूँ यहाँ से हटकर सामाना गया और वहाँ से दिल्ली की ओर चला गया। सिकंदर शाह को दमन करने के लिए शाह अबुल्मआली को पंजाब का सूबेदार नियत कर वहाँ भेज दिया। सन ९६२ हि. के रमजान महीने में (२३ जुलाई सन १५५५ ई० को) दिल्ली पहुँचकर हुमायूँ द्वितीय बार गद्दी पर बैठा। बैराम खाँ पर बड़ी कृपा दिखलाई और अपने अन्य सर्दारों को बहुत सी जागीर दी। तीस लाख से अधिक आय का पर्गना मुस्तफाबाद इसने धर्मार्थ दान कर दिया। जिस प्रकार बाबर ने हुमायूँ को हिसार फिरोज़ा जागीर में दे दिया था, उसी प्रकार हुमायूँ ने भी वही स्थान अकबर को जागीर में दिया। तर्दी बेग को दिल्ली का और सिकंदरखाँ को आगरे का अध्यक्ष नियुक्त किया।

हुमायूँ ने शाह अबुल्मआली तर्मिज़ी को पंजाब में इसलिए नियुक्त किया था कि वह सिकंदर शाह सूर को पहाड़ों से निकल कर साम्राज्य में अशांति फैलाने से रोकता रहे, पर वह अत्यंत उद्दंड प्रकृति का पुरुष था। उसने अभिमान के मारे अन्य बादशाही सर्दारों के साथ अच्छा व्यवहार न कर उन्हें अपना विरोधी बना दिया और उनकी जागीरादि के प्रबंध में हस्तक्षेप करने लगा था। इससे सिकंदर शाह की शक्ति बढ़ती गई। इस समाचार को सुनकर हुमायूँ ने अकबर को बैरामख़ाँ के साथ लाहौर सिकंदर को दमन करने के लिए भेजा और अबुल्मआली को हिसार फ़ीरोज़ा का अध्यक्ष नियत कर दिया। इसने अकबर से मिलकर उसे भी अपनी उद्दंडता का परिचय दिया था पर उसने उस समय उसे क्षमा कर दिया

था। इसी समय क़ियाख़ाँ गंग आगरे पर, अलीक़ुलीख़ाँ मेरठ और संभल पर, कम्बर दीवाना बदायूँ पर और हैदर मुहम्मदख़ाँ आख्ता बेगी बियाना पर नियत किए गए। इसी बियाना दुर्ग में इब्राहीमख़ाँ सूर का पिता ग़ाज़ीख़ाँ सूर डटा हुआ था, जिसे हैदर ने घेर लिया। बयाना के ज़मींदारों ने संधि प्रस्ताव ठीक कर और ग़ाज़ीख़ाँ के प्राण रक्षा का वचन देकर उसे सपरिवार दुर्ग से बाहर बुलवालिया पर हैदर मियाँ ने इस वचन का कुछ भी ध्यान न कर कुल दुर्ग लूट लिया और सभी छोटे बड़े मार डाले गए। ग़ाज़ीख़ाँ का सिर अकबर के पास भेजा गया, जिसने कुल वृत्तांत से अवगत होकर शहाबुद्दीनख़ाँ अहमद नैशापुरी बख्शी को बयाने के कोष का पता लगाने भेजा। हैदर ने साधारण लूट तो दिखलाया पर असली तथा मूल्यवान वस्तुओं को छिपा लिया।

क़ंबर दीवाना का, यथा नाम तथा गुणाः के अनुसार, मस्तिष्क बिगड़ गया था और वह अलीक़ुलीख़ाँ को संभल मिलने पर विशेष ईर्ष्यालु हो रहा था। वह बादशाही आज्ञानुसार अलीक़ुलीख़ाँ के पहुँचने के पहिले ही संभल से अपनी सेना लेकर बदायूँ चला गया और कांतगोला होकर तथा रुक्नख़ाँ अफ़ग़ान को परास्त कर मलावन तक अधिकार कर लिया। परंतु यहाँ अफ़ग़ानों से परास्त होकर बदायूँ लौट आया, जहाँ वह बहुत अत्याचार करने लगा। इस समाचार से बहुतेरे लड़ाके आदमी उसके पास इकट्ठे हो गए, जिससे बादशाह ने उसे दमन करने के लिए अलीक़ुलीख़ाँ को नियत किया। इसके ससैन्य पहुँचने पर कम्बर दीवाना बदायूँ दुर्ग जा बैठा जिसे अलीक़ुलीख़ाँ ने घेर लिया। क़ंबर बड़ा सतर्क रहता था क्योंकि दुर्गवाले सभी उससे चिढ़े हुए थे।

रात्रि के समय ज़मीन में कान लगाकर यह कान खोदेजाने का पता लगाया करता था। एक दिन इसी प्रकार सुनते हुए उसने एक स्थान शंका के कारण खुदवाया तो खान निकल आई जिसका झट प्रबंध कर डाला। इस दुर्ग में केवल यही एक स्थान था, जहाँ की दीवाल पानी तक नहीं पहुँची थी। अंत में दुर्ग-वासियों की सहायता से ५ रबीउल्अव्वल सन् ६६३ हि० को दुर्ग टूटा और कंवर का सिर काट कर बादशाह के पास भेजा गया।

अकबर सन् १५५६ ई० के जनवरी महीने में सरहिंद पहुँचा और वहां अबुलमआली से बिगड़े हुए कई सर्दारों को साथ लेता हुआ फिलौर के पास सतलज उतर कर काँगड़ा पहुंचा। वहाँ के राजा रामचंद के अधीनता स्वीकार कर लेने पर यह हरिआना की ओर सुलतान सिकंदर की खोज में जा रहा था कि उसे उसके पिता के गिरने का समाचार मिला। इसके मिलते ही आगे की यात्रा रोककर वह कलानौर लौट आया।

२४ जनवरी सन् १५५६ ई० को शुक्रवार के दिन हुमायूँ बादशाह संध्या के समय अपने बनाये दीन पनाह दुर्ग के भीतर शेरशाह के बनवाए महल शेरमंडल पर चढ़े, जिसे उसने अपना पुस्तकालय बना रखा था। यह इमारत दो खंड की है, जिसके छत के बीचों बीच में एक गुंबद बना हुआ है। छत पर जाने के लिए ढालुई और पतली सीढ़ियां हैं, जो दीवालों से घिरी हुई छत तक जाकर खुली हैं। उस शुक्रवार को जब उन्होंने ऊपर से उतरने के लिए एक सीढ़ी से दूसरी सीढ़ी पर ज्योंही पैर रखा कि पड़ोस की मसजिद के मुअज्ज़िन ने अज़ाँ पुकारी। हुमायूँ ने आदत के अनुसार ही वहीं घुटनों के बल झुकना चाहा पर उसका पैर छड़ी के बिछलने से या

वस्त्र में फँस जाने से फिसल गया और वह धम्म से नीचे आगया। उसके सिर और हाथों में कड़ी चोट पहुँची जिससे वह बेहोश होगया। औषधादि का बहुत प्रबंध हुआ पर कुछ फल न निकला और तीसरे दिन २७ जनवरी को हुमायूँ की मृत्यु हो गई। इस मृत्यु की तारीख 'हुमायूँ बादशाह अज़ बाम उत्फ़ाद' से (हुमायूँ बादशाह छत पर से गिर पड़े) निकलती है।

एशियाए कोचक के सुलतान सुप्रसिद्ध सुलेमान के मीरे-बहर सीदी अली रईस कुछ कारणों से भ्रमण करता दिल्ली में हुमायूँ के दरबार में कुछ दिन से अभ्यागत की तरह पर रहता था। ज्योतिष ज्ञान तथा कवित्वशक्ति के कारण हुमायूँ उसे बहुत मानता था। यह राजनीति कुशल पुरुष था और इसकी सम्मति से हुमायूँ की मृत्यु छिपाई गई तथा एक सज्जन हुमायूँ बनाकर प्रजा के सामने भी आये थे। सीदी अली भी अकबर से मिलने के लिए लाहौर चला और रास्ते में हुमायूँ के अच्छे होने का वृत्तांत फैलाता गया। लाहौर पहुँचने पर उसे अकबर के गद्दी पर बैठ जाने का समाचार मिला।

हुमायूँ के गिरने का ठीक समाचार पहुँचाने तथा अकबर को दिल्ली लिवा लाने के लिए तर्दीबेगख़ाँ ने, जो राजधानी का हाकिम और सबसे बड़ा सर्दार था, कामराँ के पुत्र मिर्ज़ा अबुलक़ासिम को तथा राजचिन्ह के कुल सामान और युद्धीय हाथियों को भेज दिया। उसने यहाँ अकबर के नाम ख़ुतबा पढ़वाया और ख़्वाजा सुलतान अली आदि अन्य सर्दारों की सहायता से वहाँ का प्रबंध ढीला नहीं होने दिया। इसके अनंतर वह हेमू का सामना करने की तैयारी करने लगा।

हुमायूँ की मृत्यु का समाचार पहुँचतेही बैरामख़ाँ

खानखानाँ ने २ रबीउस्सानी सन् ९६३ हि० (१४ फरवरी सन् १५५६ ई०) को शुक्रवार के दोपहर के समय कलानौर में अकबर को गद्दी पर बिठाकर उसके बादशाहत की घोषणा कर दी और चारों ओर हाकिमों, सेनानियों आदि को आज्ञा पत्र भेजकर बादशाही कृपाएँ दिखलाईं। इसके अनंतर दिल्ली से राजचिन्ह आदि के साथ हेमू की चढ़ाई का वृत्तांत भी आया। इधर काबुल से समाचार मिला कि बदख़्शाँ के मिर्ज़ा सुलेमान ने काबुल पर चढ़ाई कर उसे घेर रखा है। बैरामख़ाँ ने कुछ सेना सर्दारों के साथ काबुल भेजी, जिसके पहुँचने पर सुलेमान संधि कर लौट गया। दिल्ली से तर्दीबेग हेमू से परास्त होकर भाग आया, जिससे बैरामख़ाँ ने उसे प्राण दंड दिया और कुल सेना एकत्र कर दिल्ली की ओर कूच कर दिया। ५ नवंबर सन् १५५६ ई० को पानीपत के युद्ध में हेमू को परास्त कर बैरामख़ाँ ने अकबर को उसका पैतृक साम्राज्य समर्पित किया।

हुमायूँ मृत्यु के समय इक्यावन वर्ष का था और उसने पच्चीस वर्ष राज्य किया था। वह अत्यन्त चरित्रवान, सुशील और साहसी था। उसकी उदारता इतनी बढ़ी चढ़ी थी कि सारे भारत की आय भी पूरी नहीं पड़ती थी। यह धार्मिक विचारों का बड़ा पक्का था। स्नान करने के पहले वह कभी अपने खुदा का नाम नहीं लेता था। एक अवसर पर उसे मीर अब्दुल हई सद्र का नाम लेना पड़ा और उस समय तक वह स्नान नहीं किए हुए था, इसलिए उसने उसे आधे नाम अब्दुल ही से पुकारा। स्नान करने के अनंतर हुमायूँ ने मीर साहब से क्षमा याचना की और अधूरे नाम से पुकारने का यह कारण भी बतलाया। अज़ाँ का शब्द सुनते ही वह घुटने टेककर ईश्वर की प्रार्थना

करता और इसी आदत के कारण इसने अपना प्राण खोया।

यह ज्योतिष तथा गणित का अद्वितीय विद्वान था। यह कविता भी अच्छी करता था और अनेक कवि तथा विद्वान इसके दरबार में रहते थे। यह उन लोगों का बहुत आदर सत्कार करता था और इन लोगों के आपस के तर्क वितर्क शास्त्रार्थ भी नियम पूर्वक होते थे। यह जब गद्दी पर बैठा तब इसने प्रजा को तीन वर्ग में बाँटकर उनका अलग अलग नामकरण किया था। बादशाह के भाई तथा संबन्धी गण, मंसबदार, वज़ीर और सैनिक गण को 'अह्ले दौलत' (राज्य के आदमी) का सामूहिक नाम दिया गया। मुसल्मानी दृष्टि से पवित्र मनुष्यगण अर्थात् शेख़ों, सैयदों, मुल्लाओं, कवियों, विद्वानों, धर्मशास्त्रियों आदि को 'अह्ले सआदत' (पवित्रता के लोग) का नाम मिला। सुंदर मनुष्य, गायक आदि का 'अह्ले मुराद' (आनंद के लोग) नाम रखा गया। इस प्रकार बादशाह के पार्श्ववर्ती तथा दरबार में आनेवाले लोगों का विभाग कर दरबार में उनके उपस्थिति के लिए भी दिन नियत किए थे। गुरुवार तथा शनिवार अह्ले सआदत को दरबार में आने के लिए नियत किया गया था, क्योंकि इन दोनों दिन के नक्षत्र शनि और बृहस्पति शेख़ों तथा सैयदों आदि के रक्षक हैं। रविवार और मंगल वार–'अह्ले दौलत' की उपस्थिति के लिए निश्चित थे और इन दिनों में राज्य के सब कार्य निपटाए जाते थे। इसका कारण यों दिया गया था कि सूर्य के हाथ में ईश्वर ने बादशाहों का भाग्य-विधान दे रखा है और मंगल वीरों तथा योद्धाओं का रक्षक है। सोमवार तथा बुधवार आनंदोत्सव मनाने के लिए नियत किए गए थे। इन दोनों दिन के नियत करने का कारण इस प्रकार बतलाया गया है कि

चंद्रमा से सुन्दर तथा बुध से युवा पुरुषों का गान आदि इन्हीं दिनों सुनना चाहिए। शुक्रवार छुट्टी का दिन समझा जाता था और उस दिन सभी एकत्र होते थे।

पूर्वोक्त तीनों विभागों के एक एक प्रधान भी नियुक्त किए जाते थे और उनके लिए तीन प्रकार के सुवर्ण-तीर बनाए गए थे। ये उनके नेतृत्व के चिन्ह रूप उनके पास रहते थे और जब वे किसी कारण उस पद से हटाए जाते थे तब यह चिन्ह उस से लेकर दूसरे को दिए जाते थे।

हुमायूँ ने प्रबंध कार्य के चार विभाग किए थे-आतिशी, हवाई, आबी और ख़ाकी। तोपखाना, बंदूक़ तथा उनके बनाने आदि के कारखाने आतिशी अर्थात् आग्नेय विभाग के अंतर्गत थे। वस्त्रालय, रसोईघर, घुड़साल आदि के प्रबंध हवाई विभाग में समझे जाते थे। जलघर, शरबत, गुलकंद आदि के प्रबंध आबी अर्थात् जल-संबंधी विभाग में थे। खालसा भूमि तथा बादशाही इमारतों का कुल प्रबंध ख़ाकी अर्थात् भूमि संबंधी विभाग के अधीन था। हुमायूँ इसी प्रकार के बेकार विभाग आदि बनाया करता था पर कोई राजोचित ऐसी सुव्यवस्था नहीं निकाल सका जिससे वह प्राप्त राज्य की रक्षा कर सकता।

परिशिष्ट (क)

कालचक्र

१४९४ फ़र्ग़ाना में बाबर की राजगद्दी।

१५०४ फ़र्ग़ाना से निर्वासन और काबुल-विजय।

१५०८ हुमायूँ का जन्म।

१५११ तीसरी बार समरकंद पर अधिकार करना और फिर हारकर लौटना।

१५२६ पानीपत का प्रथम युद्ध।

१५२७ कन्हवा युद्ध।

१५२८ चंदेरी-विजय, अफ़ग़ानों की कन्नौज के पास हार।

१५२९ बंगाल के सुलतान को परास्त करना।

१५३० बाबर की मृत्यु और हुमायूँ को राजगद्दी।

१५३१ दौरा युद्ध में अफ़ग़ान हारे, चुनार विजय।

१५३४ गुजरात पर चढ़ाई।

१५३५ शेरशाह पर चढ़ाई, चुनार दुर्ग पर अधिकार।

१५३६ शेरखाँ का रोहतास दुर्ग ले लेना और हुमायूँ का गौड़ पर अधिकार।

१५३९ चौसा युद्ध।

१५४० कन्नौज युद्ध, भारत से निर्वासन।

१५४१ हुमायूँ का हमीदाबानू बेगम से विवाह।

१५४२ शेरशाह का मालवा विजय करना, अकबर का जन्म।

१५४३ रायसेन दुर्ग लेकर धोखे से सिलहदी को मार डालना, हुमायूँ का फारस पहुँचना।

१५४४ मारवाड़ पर चढ़ाई।

१५४५ कालिंजर विजय और शेरशाह की मृत्यु, इसलामशाह की राजगद्दी, हुमायूँ का फारस से लौटकर काबुल विजय करना।

१५४७ मालवा के सूबेदार को परास्त करना।

१५५० पंजाब में विद्रोह और महदियों का दमन, कामराँ का इसके दरबार में आना।

१५५३ इसलाम शाह की मृत्यु, फीरोज़ शाह को मारकर मुहम्मद आदिल का सुलतान होना, कामराँ का अन्धा किया जाना।

१५५५ भारत पर चढ़ाई, तातार खाँ का सरहिंद में परास्त होना, सिकंदर शाह सूर की पराजय और हुमायूँ का दिल्ली पर अधिकार।

१५५६ हुमायूँ की मृत्यु और अकबर की राजगद्दी।

परिशिष्ट (ख)

सहायक पुस्तकों का परिचय

१. बाबर का आत्मचरित–यह ग्रंथ संसार–प्रसिद्ध आत्म-चरित्रों में परिगणित है। इसे बाबर ने अत्यंत सरल भाषा में लिखा है। मूल पुस्तक शुद्ध तुर्की है जिसका फारसी अनुवाद नवाब अब्दुर्रहीम ख़ाँ खानखानाँ ने किया था। अंग्रेजी में पहिला अनुवाद डा० लीडन और मि० अर्सकिन का है और दूसरा मिसेज़ बेवरिज का है।

२. हुमायूँ नामा, गुलबदन बेगम कृत–इस पुस्तक को केवल एक अपूर्ण हस्तलिखित प्रति प्राप्त हुई थी, जो अकबर की आज्ञा से उनकी बूआ अर्थात् हुमायूँ की बहिन ने फारसी भाषा में लिखा था और जिसमें तुर्की भाषा के भी शब्द मिले हुए हैं। इसका अनुवाद अंग्रेजी भाषा में मिसेज़ बेवरिज ने किया है। हिंदी में भी इसका अनुवाद इस पुस्तक के लेखक ने किया है।

३. हुमायूँ नामा, ख्वाँदः अमीर कृत–इस ग्रंथ के लेखक का असली नाम हुमामुद्दीन है और इसमें ऐतिहासिक सामग्री कम है। लेखक हुमायूँ का समकालीन था।

४. तज़्किरतुल् वाक़िआत, जौहर आफ्ताबूची कृत–जौहर अपने स्वामी हुमायूँ का हर समय और जन्म भर का साथी था। उससे कोई भी बात नहीं छिपी थी और उसने भी अपनी पुस्तक में यथाशक्ति सब कुछ लिख डाला है। प्रति पंक्ति से

सत्यता टपकती है। इसका अंग्रेजी अनुवाद मेजर स्टुअर्ट ने किया है और हिंदी में मुं० देवीप्रसादजी ने इसी के आधार पर हुमायूँ नामा लिखा है।

५. अकबर नामा, अबुलफ़ज़्ल कृत—यह प्रसिद्ध तथा विशद इतिहास ग्रंथ है, जिसमें अकबर तक के तुर्क सम्राटों का वृत्तांत है। अंग्रेजी में दो अनुवाद हैं। उर्दू में भी वाकेआते अकबरी के नाम से इसका अनुवाद हो चुका है।

६. मुंतख़बुत्तवारीख़, अब्दुल्क़ादिर बदायूनी कृत—इसका लेखक हुमायूँ के राज्यकाल में जन्म ले चुका था। अकबर के समय यह ग्रंथ लिखा गया और इसमें सिंध पर क़ासिम की चढ़ाई से अकबर के प्रायः अंत समय तक का इतिहास समाविष्ट है। इसका अंग्रेजी अनुवाद हो चुका है। हिन्दी में इसकी आलंकारिक भाषा निकाल कर स्वतंत्र भाषा में पूरे ग्रंथ का अनुवाद किया जा चुका है, जो अभी अप्रकाशित है।

७. तारीख़े सलातीने अफ़ग़ानः, अहमद यादगार कृत—यह सूरी वंश का सेवक था। इसमें बहलोल लोदी के समय से द्वितीय पानीपत युद्ध तक का वृत्त दिया गया है।

८. तबक़ाते अकबरी, निज़ामुद्दीन अहमद बख़्शी—यह प्रसिद्ध ग्रन्थ है और इसका दूसरा नाम तारीखे निज़ामी है। इसका लेखक शुद्ध इतिहासज्ञ था। 'इलियट और डाउसन' कृत भारतीय इतिहास में अकबर का वृत्तांत विशेषतः इसी ग्रंथ से लिया गया है। यूरोपीय विद्वान इतिहास की दृष्टि से

इसे अबुलफ़ज़्ल के विशद जीवन-चरित्र से कम महत्व का नहीं समझते।

९. तारीखे रशीदी, हैदर मिर्ज़ा दोग़लात–लेखक बाबर का मौसेरा भाई था। इस ग्रंथ के विषय में प्रसिद्ध इतिहासज्ञ मि० अर्सकिन लिखते हैं कि 'यह मूल या इसका अनुवाद छापने योग्य है। यह एक विद्वान तथा कुशल पुरुष का लिखा है और इसका विशेष अंश लेखक के समय का इतिहास है, जिसमें वर्णित कितने पुरुषों को वह अच्छी तरह जानता था और कितनी घटनाओं में स्वयं सम्मिलित भी हो चुका था।'

१०. तारीखे–गुजरात, अबूतुराब कृत–इसमें गुजरात के मुसलमानी स्वतंत्र राज्य का इतिहास है, जिसका अंत अकबर के समय हुआ था।

११. मआसिरुल् उमरा, नवाब शाह नवाज़ख़ाँ कृत–यह ढाई हज़ार पृष्ठों का विशद ग्रन्थ है, जिसमें मुगल दरबार के राजाओं तथा सर्दारों की जीवनियाँ संगृहीत हैं और मिलकर मुग़ल साम्राज्य का बड़ा इतिहास ग्रन्थ हो जाती हैं। इनमें से समस्त हिंदू सर्दारों तथा राजाओं की जीवनियों का हिंदी अनुवाद इस पुस्तक के लेखक ने किया है, जो शीघ्र ही प्रकाशित होगी।

१२. फरिश्ता, मुहम्मद कासिम हिंदू शाह कृत–भारत में मुसलमानों के इतिहास का यह एक विख्यात ग्रंथ है। अंग्रेजी में इसके दो अनुवाद हो चुके हैं, जिसमें ब्रिग्ज़ कृत अच्छा है।

यह ग्रंथ इस कारण विशेष महत्व का है कि इसमें दिल्ली के बादशाहों के विशद वर्णन के सिवा दक्षिण, गुजरात, मालवा खान देश, बंगाल, बिहार, सिंध तथा काश्मीर के मुसलमान सुल्तान वंशों का भी पूरा विवरण दिया गया है। अंत में भारत के भूगोल तथा जलवायु का भी वर्णन है।

१३. हिस्ट्री ऑव इंडिया एज़ टोल्ड बाई इट्स ओन हिस्टोरिअन्स, भाग ५-६, इलिअट और डाउसन कृत—यह आठ जिल्दों में अंग्रेज़ी भाषा में लिखा गया भारत के मुसलमानी काल का विस्तृत इतिहास है, जो फारसी भाषा के एक सौ चौवन ग्रंथों के आधार पर लिखा गया है। यह ग्रंथ अत्यंत महत्व पूर्ण है।

अनुक्रम

अ

आ

श्री कमलमणि-ग्रंथमाला-कार्यालय द्वारा

प्रकाशित अन्य पुस्तकें

१. जरासंध वध महाकाव्य—हिंदी साहित्यका वीररस पूर्ण पहिला महाकाव्य है। मगधनरेश जरासंध की मथुरा पर चढ़ाई, युद्ध आदि का इसमें विस्तृत वर्णन है। काव्य में यमक, अनुप्रास आदि की खूब बहार है। पाद टिप्पणियों से ग्रंथ की क्लिष्टता दूर कर दी गई है। यह रचना भारतेंदुजी के पिता बा० गोपाल चंद्र उपनाम गिरधर दासजी की है। सचित्र है और पृ० सं० २०० है। मूल्य सजिल्द १।) और अजिल्द का १) है।

२. निमाई सन्यास नाटक—श्री महाप्रभु कृष्ण चैतन्य के सन्यास ग्रहण की घटना लेकर अमृत बाजार पत्रिका के भूतपूर्व संपादक श्री शिशिर कुमार घोष के रचित नाटक का यह अनुवाद है। वैष्णव धर्म पर इसकी भूमिका में चालीस पृष्ठों का एक मार्मिक लेख दिया गया है। सचित्र और १८० पृष्ठों की पुस्तक का मूल्य केवल ॥।) है।

३. चंद्रालोक—पीयूषवर्षी जयदेव कृत यह रचना हिंदी अनुवाद सहित प्रकाशित की गई है। इसमें कवि-जीवनी, श्लोक तथा पारिभाषिक शब्दानुक्रम भी दिए गए हैं। मू. ॥=)

४. इंशा, उनका काव्य तथा रानी केतकी की कहानी—इसमें इंशाअल्लाह खाँ की शिक्षाप्रद विस्तृत जीवनी, कुछ चुने हुए ग़ज़ल तथा यह कहानी दी गई है, जो हिंदी गद्य-साहित्य की आरंभिक रचना है। इसका पाठ बहुत शुद्ध है। डेढ़ सौ पृष्ठों की पुस्तक का मूल्य ॥=)

५. सर हेनरी लॉरेंस—अफ़ग़ान युद्ध में अंग्रेजी सेना के भयंकर नाश तथा उसके प्रतिशोध का, सिख राज्य के स्थापत तथा पतन, बड़े ग़दर आदि के दृश्य इसमें दिखलाए गए हैं। सचित्र, अच्छी छपाई, कागज पर मूल्य ॥।) ।

प्रकाशित होनेवाली पुस्तकें

१. काव्यादर्श—सुप्रसिद्ध आचार्य दंडीकी रचना यह हिंदी अनुवाद है। कवि-समय तथा परिचय, अलंकार गुणदोष आदि की विवेचना भूमिका में दीजाएगी।

२. श्री कृष्ण चैतन्य महाप्रभु की जीवनी—कलियुग-पावनावतार महाप्रभु का यह चरित्र एक भक्त लेखक द्वारा लिखा जारहा है। इसमें कई चित्र दिए जाएँगे।

३. छत्रसाल—पन्नानरेश महाराज छत्रसाल की यह जीवनी होगी। इसमें उनका चित्र तथा उनकी हिंदी कविता के उदाहरण भी दिए जाएँगे।

४. ओड़छा का इतिहास—यह छोटा सा इतिहास होगा, जिसमें बुंदेल वंश की सबसे प्राचीन गद्दी का वर्णन दिया जाएगा। इसमें कई चित्र भी रहेंगे।

५. देवी-चंद्रगुप्त नाटक—गुप्तवंशीय द्वितीय सम्राट् चंद्रगुप्त विक्रमादित्य के जीवन की कुछ घटनाओं के आधार पर यह नाटक लिखा जारहा है।

६. बाबर—मुग़ल साम्राज्य के संस्थापक वीर श्रेष्ठ बाबर का यह चरित्र फारसी के इतिहासों के आधार पर लिखा गया है।

७. जहाँगीर—सुप्रसिद्ध सम्राट् अकबर के पुत्र सलीम की यह जीवनी है। नूरजहाँ, खुसरो आदि की घटनाओं के वर्णन से यह जीवनी वि[illegible]क होगी।

विनीत

[illegible]नेजर—श्रीकमलमणि ग्रंथमाला कार्यालय,
काशी।